कृतज्ञता प्रकाश

सूत्रागम प्रकाशक समितिके आद्य स्तम्भ श्रीमान् शेठ विजयकुमार चुनीलाल फूलपगरके महान् कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अपना न्यायसम्पन्न धन आगम प्रकाशनमें खुले हाथों व्यय किया है। आप बड़े सुशील-सदाचारी-एक नारीव्रती और सरल प्रकृतिके भावुक-आत्मा हैं। अपनी प्रामाणिकतासे आपने राजस्थान की प्रतिष्ठाको चार चांद लगाये हैं। आपने पूना चतुर्मासमें साहित्य प्रचारमें अद्वितीय सेवा की है। आपकी भावना सदा यही रही है कि सुत्तागमे का प्रचार भारत देशके अतिरिक्त आन्तर-राष्ट्रोंमें भी खूब ही हो। आपकी भावना कल्पवृक्षके समान फली फूली, और फारन-कंट्री में सेंकडों जगह यूनीवरसिटि और सेण्ट्रल-लाइब्रेरियों में सुत्तागमे ने व्यापक होकर महा सन्मान पाया, वहाँ के प्रखर प्राकृतज्ञोंने इसके स्वाध्यायमें निरत रहकर विज्ञानमें सरल प्रवेश पाया। यह सब आपकी सेवा सहायता एवं सद्भावनाका परिणाम है।

प्रकाशक—

आभार प्रदर्शन

श्रीमान् नरभेराम मोरारजी महेताके हम बड़े आभारी हैं, क्योंकि आपने अंबरनाथमें सुत्तागमे के प्रकाशनमें खूब हाथ बटाया है। आप नित्य समय पर सामायिक प्रतिक्रमणका लाभ लेते हैं। आपका विनीत स्वभाव आकर्षक है। आपका चरित्र देववन्द्य है। आप आगम-स्वाध्यायका निरन्तर लाभ लेते हैं। आप आध्यात्मिक रसके पूर्ण रसिक हैं। आपका जीवन योगियोंका सा एकान्त सत्यमय और वैराग्यपूर्ण है। आप अनासक्तियोगके अनुभूत महामानव हैं। आपकी प्रामाणिकता विमको कम्पनीमें पारिजात सुगन्धके समान व्यापक है। आप ईमानदारीके सही अर्थमें अभूतपूर्व अश्रुतपूर्व देवता हैं। आपका आचार-विचार समदृष्टिकी तह तक पहुँचा है। आप सत्यनिरत और धर्मप्राण हैं। आपने सौराष्ट्रका सन्मान अपने चरित्र बलसे बढाया है। आपकी सहधर्मिणी लीलादेवी धर्म-विनय और संयम की उज्वल प्रतिमूर्ति हैं। आप दोनों इस युगके विजयकुमार और विजयकुमारी हैं। आपका श्रावकीय जीवन आत्ममार्जनकी ओर है।

प्रकाशक—

'सुत्तागमे' के बारेमें कुछ आवश्यक निवेदन

'**सुत्तागमे**' (स्थानाङ्ग) के पांचवें स्थानमें पांच ज्ञान वर्णित हैं, जिनमें श्रुतज्ञानको इसलिये परमोपकारी माना है, कि इस के द्वारा अपने और परायेका उत्थान और कल्याण होता है। यह ज्ञान तीर्थंकरोंकी वाणीका संग्रह है। यह समुद्रकी तरह अगाध होनेके कारण इसका माप छद्मस्थ-अज्ञ नहीं लगा सकता। १४ पूर्वका ज्ञान(दृष्टिवाद)परम्परा-धारणासे इस समय विच्छेद माना है। शेष ११ अंग सूत्र (आचार्य-गणि पिटक) ज्ञान भी कितना विशाल है, इसका वर्णन समवायांग सूत्रानुसार इस प्रकार है—

आचारांग—के दो श्रुतस्कन्ध, और १८००० पद संख्या हैं।

सूत्रकृतांग—में दो श्रुतस्कन्ध, और ३६००० पद हैं।

स्थानांग—में ७२००० पद हैं।

समवायांग—के पद १४४००० हैं।

भगवती—३६००० प्रश्नोत्तर और एकश्रुतस्कन्ध, १०० अध्ययन, १०००० उद्देशक, उतने ही समुद्देशक, और ८४००० पद संख्या है।

ज्ञाताधर्मकथाङ्ग—में २६ अध्याय, धर्मकथाके १० वर्ग, एक-एक धर्मकथांगकी ५००-५०० आख्यायिका, एक-एक आख्यायिकामें ५००-५०० उपाख्यायिका, एक-एक उपाख्यायिकामें ५०० ५०० आख्यायिकोपाख्यायिकाएँ हैं, सब मिल कर साढे तीन करोड आख्यायिकाओंका योग है। इसके २६ उद्देशनकाल और उतने ही समुद्देशनकाल, और ५७६००० पद गणना है।

उपासकदशांग—में एक श्रुतस्कन्ध, १० अध्ययन, १० उद्देशनकाल, १० समुद्देशनकाल, और ११५२००० पद हैं।

अन्तकृद्दशांग—में एक श्रुतस्कन्ध, दश अध्ययन, ७ वर्ग, १० समुद्देशनकाल, और २३०४००० पद संख्या है।

अनुत्तरोपपातिकदशांग—में एक श्रुतस्कन्ध, १० अध्ययन, तीनवर्ग, १० उद्देशनकाल १० समुद्देशन काल,४६०८०००पद हैं।

प्रश्नव्याकरण—इसमें १०८ प्रश्न, १०८ उत्तर, एक श्रुतस्कन्ध, ४५ उद्देशनकाल, ४५ समुद्देशनकाल, ६२१६००० पद संख्या है।

विपाकश्रुत- इसमें २० अध्ययन, २० उद्देशनकाल, २० समुद्देशनकाल, १८४३२००० पद हैं।

दृष्टिवाद—इसके परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत(पूर्व),अनुयोग और चूलिकाके भेद से पांच प्रकार हैं।

(नोट) काल दोष से समुद्रके समान अनन्तज्ञान समृद्ध इस महाग्रन्थ की विच्छित्ति हो चुकी है।

इस प्रकार यह 'सुत्तागमे' (सूत्र-शास्त्र-आगम-प्रवचन-शास्त्रका मूलपाठ या जिसके अक्षर थोड़े और अर्थ अधिक अगाध हो-(आगम-सिद्धान्त निश्चितार्थ-एकवाक्यता-सूत्र, आप्त वाक्य द्वारा सम्प्राप्त-ज्ञान) अनादि-अनन्त ज्ञानकी परम्परा की वस्तु है। इसे सभीने माना है। अनन्त कालसे इसका जीर्णोद्धार सर्वज्ञ द्वारा ही होता आया है।

सूत्रागम-अर्थागम और उभयागम इन तीनों में वास्तवमें 'अर्थागम' को पहला आगम कहा जा सकता है। 'अत्थं भासइ अरहा" के न्याय से। क्योंकि तीर्थंकर-अर्हन् सर्व प्रथम अर्थ का ही प्रतिपादन करते हैं(वस्तुका तथ्य बताते हैं), उसे फिर आगे गणधर या पूर्वधर पद्य-गद्यकी रचनासे गूंथकर उसे सूत्रके रूपमें लाते हैं। फिर बहुत कालके उपरान्त उनके शिष्य-प्रशिष्य

मूल और अर्थको रोचक ढंगसे जोड़कर उभयागमका रूप देते हैं। इस प्रकार सूत्र और आगम एक ही हैं। इसके सम्बन्धमें महामानवोंके द्वारा मन्थन किया जानेपर स्पष्ट माखन यह निकलता है।

आगम—गुरु परम्परासे प्रचलित, जीवादि तत्वों और पदार्थोंका ज्ञान करानेवाला 'आगम' कहलाता है, और वह **लौकिक** और **लोकोत्तर** भेद से दो प्रकारका बताया गया है। अज्ञानी-मिथ्या धारणावालेका ज्ञान **लौकिक-आगम** है, और त्रिकालाबाधित सर्वज्ञ-सर्वदर्शी द्वारा प्रतिपादित सम्यक्ज्ञान (पूर्वापर-अविरुद्ध, वादी प्रतिवादी द्वारा अकाट्य) **लोकोत्तर-आगम** है। वह द्वादशाङ्ग आचार्य-गणिपिटक कहलाता है।

अथवा—आगमके तीन प्रकार भी हैं, जैसे कि सूत्रागम, अर्थागम और उभयागम।

अथवा—आगमके अन्य रीतिसे भी तीन भेद किये गये हैं, अत्तागम(आत्मागम-आप्तागम), अन्तरागम और परम्परागम।

(१) **अत्तागम** (आत्मागम-आप्तागम) अपना (सर्वज्ञ द्वारा) रचा हुआ (स्वोपज्ञ रचना)।

(२) **अनन्तरागम**—गुरुओं(गणधरों)द्वारा रचा गया।

(३) **परम्परागम**—अनाद्यनन्त परम्परा से प्रचलित सार्वज्ञान।

१—तीर्थंकर अर्थागम-अर्थ(वस्तु-तथ्य या उसका सरलातिसरल अभिप्राय)को प्रकाशमें लाते हैं, वही आप्तागम (आत्मागम)कहलाता है। उसी भावको गणधर(पिटकधर) सूत्रका रूप देते हैं। और वह "**सुत्तागमे**"(आप्तागम) प्रामाणिक शास्त्ररत्न समझा जाता है।

२—अर्थसे अनन्तरागम गणधर या आगे चलकर शिष्यों प्रशिष्यों द्वारा सर्जित सूत्र **अनन्तरागम** का रूप प्राप्त करता है।

३—फिर वही मन्थन-ज्ञान अर्थसे परम्परागम परा-अपरा ज्ञान कहलाने लगता है, इसके आगे (सूत्र और अर्थसे उपरान्त) कोई आप्तागम-आत्मागम अलग तथ्य नहीं होता, न ही अनन्तरागम ! केवल उसे सर्वसम्मत परम्परागम ही कहा जाता है।

यह लोकोत्तर-आगमका सही निष्कर्ष है, इसको अनुयोगद्वार सूत्रमें ज्ञानका गुण प्रमाण(प्रामाणिक)कहा गया है। इस अपेक्षा से प्रस्तुत सम्पादित 'सुत्तागमे' लोकोत्तरीय आगमका शुद्धपरम्परागम है। यह इतना अधिक शुद्धतम और निर्दोष है, कि सचमुच पूर्वापर विरोध रहित श्रुत इसी में है। महावीर वाणी के परम श्रद्धालु महानुभाव इसे अपनायें और भव्य-प्ररिक्त संसारी हो कर सरल मनसे इसमें अहर्निश स्वाध्याय-निरत रह कर तीर्थंकर-नाम-गोत्र उपार्जन तकका लाभ प्राप्त करें।



प्रकाशकीय

कालके गर्भमें धर्म (वस्तुका स्वभाव) अनन्तकालसे दुर्गतिमें पड़नेसे धारण-रक्षण करनेका अपना काम करता चला आ रहा है। वह(धर्म)कुछ नई वस्तु नहीं है, वह तो अनादि-अनन्त है। यह विराट्-विश्व की उदर कन्दरामें शेषनागकी नाईं फैला पडा है। साथ ही इसके जानने समझने वाले पुरुष भी उसी परम्परासे होते आये हैं। लोगोंको जब-जब इसे जानने समझनेमें मन्दता आने लगती है तब तब यथा समय कोई न कोई महान् आत्मा अपने उपादानसे धर्मतत्वको जानने का निमित्त प्रस्तुत करता है। वह निमित्त कारण सादि सान्त होकर भी उपादानके साथ प्रवाह रूपसे अनाद्यनिधन है, और इसका साथी धर्म भी समकक्ष है।

बुराईके गढेमें पड़नेसे बचानेवाला धर्म धर्मीके अन्तस्तलसे उद्भूत होता है और वह अपने निर्मल अन्तस्तलको लोगोंके अन्तःकरण से इस प्रकार मिलादेता है, जैसे दियेके प्रकाश के साथ दिया !

वर्तमानकालमें महावीरने जगत्को अहिंसा, समकत्व और यथार्थ सत्यका जो सन्देश दिया है, उनके समकालीन बुद्धने भी लोगोंकी वहमी नीन्द उडानेका यथासाध्य सहयोग दिया है। दो भुजाओंकी तरह दोनों महामानवोंने मानव जगत् को असली तथ्य बताकर समत्वके मण्डल में लाने का भागीरथ प्रयत्न किया है। एक ने तो अहिंसा संयम और तपसे जगत्का उद्धार किया, तब दूसरेने लोगोंको अहिंसा और प्रेमके सूत्रमें बांधा, जनहित कार्य दोनों ने किया।

बुद्ध से पहले बुद्ध होने न होनेके बारेमें श्री राहुलने अपनी भूमिकामें स्पष्ट किया है। साथ ही उन्होंने तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वके विषय में सूत्रकृतांगसे ही सिद्ध करके ठीकसे दीवेकी तरह तीर्थंकर परम्परा बताई है।

'सुत्तागमे' पार्श्वापत्यकी चर्चा उत्तराध्ययनसूत्रसे लगाकर भगवतीसूत्र, सूत्रकृतांग आदि तकमें मिलती है। **बाईसवें अरिष्ट-नेमितीर्थंकर** का वर्णन अन्तकृद्दशांगमें, **बीसवें मुनिसुव्रत** तीर्थंकर का वर्णन भगवतीसूत्रमें, ऋषभदेव तीर्थंकर का चरित्र जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति और कल्पसूत्रमें तथा ज्ञाताधर्मकथांगमें **मल्लीनाथ तीर्थंकर** का हाल बयान किया गया है।

ऋषभदेव-तीर्थंकर का कथन स्फुट या अस्फुटरूपसे सनातन पुराणोंमें भी वर्णित है। श्रीमद्भागवतपुराणमें वहुत विस्तारके साथ लिखा है।

आदिनाथ अपरनाम ऋषभदेव तीर्थंकर के नाम लेवा कहीं

बाबा आदमको उसीरूपमें बताते हैं, तब नाथ सम्प्रदायवाले अपने नौं आराध्य नाथोंमें ओंकारनाथ के बाद आदिनाथ कहकर आदिनाथको अपना दूसरा नाथ स्वीकार करते हैं, भाषा भेद हो सकता है पर भावमें एकता ही झलकती है।

तीर्थंकरोंने अपने मान-प्रतीष्ठा बढ़ानेके हेतु, या लोगोंको सम्प्रदायके घेरेमें डालनेके उद्देश्यसे कोई काम नहीं किया, उन्होंने तो मानवधर्मका प्रकाश फैलाकर मानवको सत्य-तथ्य-हिताचारके द्वारा उसके स्तरको ऊँचा उठानेका काम अपने सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चरित्रसे किया है।

यहाँ तक कि(व्यावहारिक दृष्टि से)घरमें रहते हुये ऋषभ-देव तीर्थंकरने उस समयके प्रकृतिके सरल, अबोध और भोले-भाले लोगोंको खाना पकाना सिखाने, कपड़े सीने, बरतन बनाने, हजामत करने, आदि शिल्पके साथ पढ़ने-लिखने-गणित गिनने आदिका ज्ञान भी जनताका हित और उत्कर्ष ध्यानमें रखकर समझाया, उनमें मुतलक यह खयाल न था कि मैं ये धंधेदारी के काम बता रहा हूँ, इसमें मुझे कुछ पारम्पारिकी क्रिया लगेगी, और चिरकाल तक लोग इन शिल्पोंको काममें लाते रहेंगे, और आगे वाले लोग इसे विज्ञान द्वारा बढ़ायंगे, इसमें मेरी आत्मा तक कुछ हानि-वृद्धि होगी या दोष आयगा। वे इस पचड़ेमें न पड़े, उन्होंने तो जनताको द्रव्य-भावसे ऊँचा उठाकर कर्म-भूमि बनाया। लोगोंको कर्मवीरसे धर्मवीर तकका पाठ पढ़ाकर मानवी आदर्श खड़ा किया। जोकि उस समयके आदमियोंको उस पथका पथिक बनाना आवश्यक था।

तीर्थंकरोंका इतिहास 'सुत्तागमे" (सुखविपाक सूत्र) में भरतक्षेत्रके बाहरी और दूरवर्ती क्षेत्रोंमें जैसे विदेहक्षेत्रमें भी सुबाहु जैसे विहरमान तीर्थंकरका कथन मिलता है, जोकि

मौलिक और महत्वपूर्ण है। हम पहले ही कह आये हैं कि तीर्थंकर-महामानव बाडे सिंघाडे बनानेका काम नहीं करते, वे तो आदर्श और तथ्यके वक्ता होते हैं। वे सबको समान उपदेश करते हैं। आचारांगके आदेशानुसार वे तो तुच्छ और अतुच्छ सबको न्याय-संगत-सीधा-सरलमार्ग समझाकर लोगोंके विचारोंके टुकड़ोंको गोंदकी तरह जोड़ते हैं।

'सुत्तागमे'(उपासक दशाँग सूत्र)में सकडाल और महावीरके संवादसे यही प्रमाणित होता है। सकडाल एक करोड़पति प्रजापति(कुम्हार)है। वह पुरुषार्थको न मानकर 'एकान्त होनहार' को मानता है। इसी विचारके बारेमें महावीर पूछते हैं कि सकडाल ! ये बरतन कैसे बनते हैं ?

वह बरतन बनानेकी सारी विधि-परम्पराको दोहराकर अन्तमें होनहारका छोंक लगाता है, और कहता है कि मट्टीकी होनहार बरतन बननेके रूपमें होने की थी।

भगवान् बोले कि यदि कोई तेरी दुकानमें घुसकर इन क़रीनेसे रक्खे बरतनोंको फोड़ने लगे तो तू क्या समझेगा ?

उसने कहा-उसे ऐसा करनेसे रोकूं, स्वयं व्यवहार-नीतिके अनुसार दण्ड दूं, और सत्तासे दण्डित भी कराऊं।

भगवान्‌ने फ़र्माया, तब क्या यह घटना होनहारसे बाहर हुई है ?

अरे ! तेरी स्त्रीसे कोई बलात्कार करे तो उस समय तू क्या करेगा ?

उत्तर—उसकी तो मैं जान ही मार डालूं, और यदि मेरे हाथसे बच जाय तो प्राणदण्ड दिलवाऊँ।

भगवान्-क्या यह होनहारसे अलग कुछ नई बात हुई है ?

बस वह इन सीधी, वाणीविलास रहित सरल युक्तिसे पुरुषार्थकी बार पर आकर टिक जाता है और पुराने अन्ध विश्वासकी ढींखरोंसे बच कर पुरुषार्थका राजमार्ग पा लेता है।

इसी प्रकार पार्श्वापत्य केशीकुमार श्रमण परदेशी राजाके प्रकरण(सुत्तागमे-राय-प्रसेणी-सूत्र)में युक्ति-प्रमाण और दलीलों से परदेशीको नास्तिक-धारणासे हटाकर उसे सरल-पथका राही(आस्तिक-प्रामाणिक-अहिंसापरायण-समदृष्टि-न्याय-यशील)बनाकर लोगोंकी एक अन्यायी शासक से जान छुड़वाते हैं। यानी मानव-प्रेमका पुजारी-समदृष्टि-श्रावक बना देते हैं।

महामानव तो लोगोंको जातिवाद-सम्प्रदायवाद-पक्षवाद-अज्ञानवाद-बाह्याभ्यन्तरद्वन्द्व एवं भ्रमणासे उबार लेते हैं। 'सुत्तागमे' के बत्तीस सूत्रोंमें यह सब ठौर-ठौर पर प्रतिपादन किया है। इसी प्रकार बुद्धने भी दुनियादारोंको एक मानवी जातिके सूत्रमें पिरोनेका काम किया है।

"शोणदण्ड प्राध्यापक और बुद्धके संवाद से भी यही परिणाम निकलता है कि उस ब्राह्मण युगमें बुद्धने लोगोंको जाति-जालके पचड़ेसे निकालकर उन्हें सर्वजाति-समभाव तथा अहंकार रहित एकताके क्षेत्रमें रहनेका मानवी सन्देश देकर व्यवहार धर्मकी खरी कसोटी करके ही खरा माल तोला। उन्होंने सिद्ध कर दिखाया कि ब्राह्मण जाति, रूप, और धनसे न हो कर ज्ञान और चरित्रसे है। जिसे उस समय के करोड़ों आदमियोंने डंकेकी चोटसे मान लिया। अहिंसा और प्रेमकी सही प्रेरणाने उनको आपसमें मिश्री-दूधकी तरह मिलाकर सरस बना दिया। ठीक ही है महापुरुष लोगोंके मनोंको मिलाते हैं, तोड़ते नहीं।"

अगरचे अवतार इसी अनुसन्धानके लिये जगत्के सामने हैं, परन्तु उनके प्रगट होनेमें जो विशेषता है उसे जाननेकी

आवश्यकता है। अवतार और तीर्थंकरमें यही अन्तर है कि वे ऊपरसे नीचे उतरते हैं, तब तीर्थंकर नीचेसे ऊपर(सिद्धगति-अपुनरावृत्तिधाम)को जाते हैं। उनके काम भी जनता को अभयदान देनेवाले उपयोगी और ऊँचे होते हैं।

जैसे, कि—भगवान् ऋषभदेव पहले तीर्थंकरके बड़े पुत्र भरत चक्रवर्तीने अपने से छोटे अठानवें राजा)भाईओंसे कहा कि अब से आगे तुम सब मेरे ही अधिकारमें रहकर मेरी आन-दान मानो, क्योंकि मैं अब सार्वभौम-शासक हूं, अतः मेरे दास हो कर रहो। उत्तरमें उन्होंने दास बननेसे इंकार करके(अपने पिता)ऋषभदेव तीर्थंकर की सेवामें आकर भरतकी शिकायत की। तथा दास न बननेका विचार प्रकट किया। तब भगवान् ऋषभदेव तीर्थंकरने अपने अठानवें पुत्रोंको युद्धकी सम्मति न देकर संसारसे विरक्ति दिलाकर श्रमण बननेका मार्ग सुझाया, और वे सबके सब(तीर्थंकर की आज्ञा मानकर)श्रमण हो गये।

सोलहवें – शान्तिनाथ तीर्थंकरने शान्तिके पाने का राजमार्ग सडियल-सत्ता छोड़कर आरम्भ परिग्रहसे मुक्त होकर परम शान्ति पाना बताया।

उन्नीसवें—मल्लीनाथ-तीर्थंकर(सुत्तागमे ज्ञाता धर्मकथा सूत्र)के कथानुसार यदि उनकी शिक्षा का अनुसरण किया जाये तो लोगों में अराजकता ही न आने पाये, और समत्व-समाधि तथा प्रामाणिकता की पुष्टि हो। उन्होंने बाहर से युद्ध के लिये आये छः मित्र-राजाओं को यह बोध(परामर्श) दिया कि तुम छहों मात्र एक स्त्री के अपावन देह-पिण्ड में आसक्त होकर क्यों नर संहार मचाने आये हो। औरत के बाहरी रूप-रंग को न देखकर यदि उसके भीतरी भाग को अन्तर दृष्टि से जानोगे तो उसे अपावन और घिनावनी वस्तु पाओगे। जिस पर कोई भी बुद्धिमान् मोहित न होगा। उनका

अनासक्त प्रद बोध सुनकर उन्हें आत्मभान हुआ। वे युद्ध और विवाह के विचार से मुक्त होकर श्रमण की दिशा में जाकर गणधर पद विभूषित हुये।

वीसवें—मुनिसुव्रत-तीर्थंकर ने आत्म दमन पूर्वक शान्ति-सोपान पर चढ़ने की सम्मति प्रदान की।

बाईसवें--अरिष्टनेमि तीर्थंकरने विवाह के लिए जाते-जाते मार्ग में रोककर बांधे गये पशुओंकी पुकार पर ध्यान देकर उन्हें बन्धनमुक्त कराकर आप सदा के लिए योगी और वशी हो गये।

तेईसवें—पार्श्वनाथ तीर्थंकर किसी छोटी सी सूखी झील में बड़ तले (समाधि-ध्यानावस्था में) खड़े थे, उनके विरोधी मेघ माली देवने अप्रसन्न होकर असीम पानी बरसाया और वह नाक तक आ गया पर वे अपने शुक्लध्यान में मगन रहे, न हिले न डुले न विरोधी पर किसी प्रकार का दुर्भाव ही आने दिया, रोष तो उनमें कब उपजने वाला था। समदर्शिता का कितना अच्छा नमूना सिद्ध हुये, अन्त में अपराधी को भी क्षमादान दिया।

चौबीसवें--महावीर तीर्थंकर श्रमण अवस्था में पेढाल उद्यान में समाधिस्थ थे। और संगम विरोधी देवने बुरी धारणा से प्रेरित होकर उनको बड़ी-बड़ी यातनायें दीं, वह भी छः मास तक देता रहा, पर महावीर-तीर्थंकर अणुमात्र भी विचलित न हुये। वह अन्त में हार कर जाने लगा, कुछ दूर जाकर मुडकर देखा तो उनके आंखों से आँसु की बूँदें ढुलक रही थीं। वह कौतुहल वश वापस आकर बोला कि भट्टारक! अब तो मैं तुम्हारा पीछा छोड़कर जा रहा हूँ, तुम्हें अब नया कष्ट क्या हुआ है?

महावीर—तुम छः मास मुझ पर उपसर्ग के आक्रमण करते रहे पर मैं तुम्हारी इस बुरी धारणा को न बदल सका। जड़ लोह को जड़ पारसमणि अपने स्पर्श से उसें सुवर्णता देता है,

पर मैं तुम्हारी हिंसक-क्रूर प्रकृति को दयालुता में न बदल सका यही एक अर्मान है। संगम लज्जित मुख से खिसक गया, पर वह यातनायें देकर भी उन्हें चलायमान तो न कर सका। वे भी उसकी असीम अवज्ञाओं पर जरा भी गर्म न हुये, प्रत्युत समभावस्थ ही रहे।

ऐसे उत्तम समता के योगी, सन्मार्ग दर्शक पीछे अनन्त तीर्थंकर हो चुके हैं, आगे भी होंगे, उनकी निष्पक्ष उपकारिणी वाणी से अनन्तानन्त लोगों ने दुराग्रह-बुराइयोंके सागरसे पार भी पाया।

हमारे लायक मित्र त्रिपिटकाचार्य महापण्डित राहुल सांकृत्यायनने महावीर-तीर्थंकरके उपदेश(सूत्रकृताङ्ग)का सरल-हिन्दी भाषाकी वोलचालमें अनुवाद करनेका यथाक्षयोपशम प्रयत्न किया है, देशकालके अनुसार मेलजोल॰। यह कितना अच्छा स्वर्णयुग है कि इसमें एक भिन्न विचारक दूसरे भिन्न विचारककी धारणा-मान्यताओंको अपनी राष्ट्रीय-लोक भाषामें प्रस्तुत करता है, यह अमूल्य सेवा कितनी गौरवपूर्ण वस्तु है। पहले भी कई अच्छे लोगोंमें ऐसी ही विचारसरणी पाई गई है। जैसे कि **पाणिनि** ऋषि **शाकटायन** ऋषिकी रीतिको अपने व्याकरणमें दर्ज करते हैं, और **गार्ग्य-गालव** ऋषिके मतकी क़दर करके उसे पसंद करते हैं, और अपनाते हैं। उन्होंने इसे शिष्टाचार और ग्रन्थका गौरव भी माना है। इसी भाँति यह युग भी राग-द्वेष मिटाकर गुण ग्रहणतापूर्वक परस्पर मिलनेका युग है। न कि खींचातानी का। प्रो० दिलमहम्मदने गीताको खालिस उर्दू-शायरीमें रंगकर उसे दिलकी-गीता वनाया, और लोगोंने उसे चावसे अपनाया।

श्रीमान् राहुलने सूत्रकृतांगका अनुवाद करते समय स्वाध्याय-चिन्तन-मनन-निदिध्यासन पूर्वक इसकी टीका-चूर्णी-भाष्य-वृत्ति-अनुवाद आदिकी भी आँखें देखी हैं। यदि स्वाध्याय

प्रेमियोंने इसे अपनाया और इसके स्वाध्यायके द्वारा चरित्र संगठन और मनोबलका विकास किया तो इसके प्रकाशनका प्रयास सफल समझा जायगा।

इसके अतिरिक्ति 'सूत्रागम प्रकाशक-समिति'ने अपने पवित्र ३२ सूत्र-आगमोंको 'सुत्तागमे' में बरसों पहले (मूल अर्धमागधी में) छपवाकर भारतीय यूनीवरसिटिके अलावा आन्तर-राष्ट्रों की यूनिवरसिटियों और सेन्टरलाइब्रेरियोमें भी अमूल्य भेजा है। वहांके प्राकृत-संस्कृत-पालीके प्रखर-निष्पक्ष विद्वानोंने इसे पढ़कर बड़ी कदर की है। तथा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इस ग्रन्थराज का अथ से अन्त तक खूब स्वाध्याय किया है, तथा अपने पत्रों-प्रमाणपत्रोंमें 'सुत्तागमे' की बड़ी ही प्रतिष्ठाके साथ मुक्तकण्ठसे सराहना की है। उनके पत्रोंका संग्रह विद्यमान है, अवकाश पाकर आपके मनोगृह तक पहुंचानेका यथाशक्य प्रयत्न किया जायगा।

'सुत्तागमे' के समान अब अर्थागमके प्रकाशनका काम चालु है। आचारांग (पहला श्रुतस्कन्ध,), उपासक-दशांग, विपाकश्रुत, निरयावलिका पंचक आदि तो प्रकाशित हो ही चुके हैं। अब यह सूत्रकृतांगसूत्र हिन्दी आपके सुन्दर कर कमलोंमें अर्पित है। इस आध्यात्मिक-दार्शनिक सूत्रके स्वाध्यायसे हमें आशा है आप व्यापक लाभ लेंगे। इसकी सरल हिन्दी आपके मनको मुरलीकी तानकी तरह मोह लेगी। तथा आगेकेलिये प्रश्न-व्याकरण और रायपसेणीके अनुवाद तैयार होकर कुछ ही दिनोंमें छपनेकेलिये प्रेसमें पहुंचने वाले हैं। विद्युद्वेगसे काम चालु है। आपका स्वाध्याय प्रेम यदि हमारे लिये वरदान स्वरूप बन कर बढता रहा तो हम उसके सहारे यथासम्भव कुछ ही वर्षोंमें अर्थागमके शेष सूत्र भी प्रकाशमें ले आयंगे, और आपकी स्वाध्याय एवं साहित्य सेवा पुष्कल रूपमें कर पायंगे।

भूमिका

पालि पिटकोंका भारतके समकालीन धर्म और भूगोल आदिके ज्ञानमें जैसे बड़ा महत्व है, वैसे ही जैन आगमोंका भी बड़ा महत्व है। इस प्रकार उनका सनातन महत्व बहुतसे वैसे लोगोंके लिये भी है, जिनका धर्मसे विशेष सम्बन्ध नहीं हैं। भारतके इतिहासकी ठोस सामग्री उसी समयसे मिलती है, जब कि महावीर और बुद्ध हुये, और वह दोनोंके पिटकोंमें सुरक्षित है। दोनों पिटकोंमें बौद्ध पिटक बहुत विशाल है, ३२ अक्षरके श्लोकोंमें गणना करने पर उनकी संख्या चार लाखसे अधिक होगी, जैन (आचार्य-गणि) पिटक (काल-दोषसे) ७२००० श्लोक हैं।

दोनों की परम्परा उनकी भाषा मागधी बतलाती है, जिसका अर्थ यही है, कि महावीर और बुद्धके समय जो मागधी बोली जाती थी, दोनों महापुरुषोंके उसीमें (उस समयकी लोकभाषामें) उपदेश हुये थे। पर ग्रन्थ तो उस समय लिखे नहीं गये, केवल गुरुसे सुनकर उन्हें शिष्योंने धारण किया। धारण करते पालि पिटकको (बौद्ध पालि पिटक को) २४ पीढी और जैन पिटकको २९ पीढियां बीत गईं, तब उन्हें लेखबद्ध किया गया। इस सारे समयमें पिटकधरोंकी भाषाका प्रभाव पड़ता रहा।

भगवान् महावीरका जन्म-स्थान वैशाली और भगवान् बुद्धका जन्म-स्थान लुम्बिनी (।) रुम्मिनदेई विहार और उत्तरप्रदेश के दो प्रदेशोंमें है। हर जिला लेने पर वैशाली आधुनिक बसाढ मुजफ्फरपुर जिलेमें है, जहाँ से पश्चिममें चलने पर सारन, देवरिया फिर गोरखपुरकी सीमाके पास ही रुम्मिनदेई नेपालकी तराईमें पड़ती है। मील

सीधा लेने पर वैशालीसे लुम्बिनी २५० मील पश्चिमोत्तर दिशामें है। आज भाषा दोनों जगहकी एक ही हैं, मात्र अन्तर इतना ही है कि वैशालीमें बहुत हल्कासा मैथिली: भाषाका प्रभाव पड़ता दीखता है, जब कि रुम्मिनदेईमें बहुत हल्कासा प्रभाव अवधी कौसलीका है। दोनों जगह भोजपुरी बोली जाती है।

आज की मगही प्राचीन मागधीकी सन्तान है। भोजपुरीको भी विद्वान् उसीकी सन्तान मानते हैं। प्राचीनकालमें इनका अन्तर और कम रहा होगा। बुद्ध और महावीर एक ही भाषा बोलते रहे होंगे। जो बदलते-बदलते ईसापूर्व तीसरी सदीमें अशोकके पूर्वी अभिलेखों की भाषा बन गई, जिसे पालि नाम दे दिया गया है। ईसवी सन् के आरम्भके साथ प्राकृत भाषा आन उपस्थित होती है, जिसकी बोल-चालकी भाषाका नमूना किसी अभिलेखमें नहीं पाया जाता, पर उसका साहित्यिक नमूना बहुत मिलता है। पालि त्रिपिटक पालि काल ही में ... हां उसके अन्तमें लेखबद्ध हुये, इसलिये वहां पुराने रूप मिलते हैं, जैनागम प्राकृत कालमें लिपिबद्ध हुये, इसलिये उनको अर्धमागधीमें होना ही चाहिये। दोनोंकी भाषाओं पर पिटकधरों की भाषा का प्रभाव है, इसलिये पालि पिटक की भाषा मागधी पालिकी अपेक्षा सौराष्ट्री-महाराष्ट्री पालिके समीपमें है, और जैन आगमों की मागधी सौरसेनी-महाराष्ट्री प्राकृतके समीप है।

पालि पिटक पर काल और देशका प्रभाव पड़ा है, पर इसमें सन्देह नहीं, बुद्धकी वाणी इसीमें सुरक्षित है, वही बात जैन आगमों के बारेमें भी है। महावीरकी वाणी जैन आगमोंमें ही है। पालि त्रिपिटक सिंहल, बर्मी, और रोमन लिपियोंमें प्राप्य था, अब तो नवनालन्दाविहारसे नागरीमें भी प्राय: सारा निकल चुका है। जैन आगमके अलग-अलग भाग अलग-अलग स्थानोंसे निकले थे, जिनमें कितने ही दुर्लभ भी हो गये, श्रीपुप्फ

भिक्खूने सारे (वर्तमान) जैन पिटक सुत्तागम (।) को दो भागोंमें मुद्रित कराके सुलभ कर दिया। मैं बहुत दिनोंसे उन्हें संग्रह करना चाहता था, पर ऊपर लिखी दिक्कतोंके कारण आशा नहीं रखता था, कि उन्हें देख सकूंगा।

आगम शब्द बौद्धोंमें भी सुपरिचित है। जैसे तीर्थंकरके प्रवचनको आगम कहते हैं, वैसे ही बुद्धवचनका भी वही नाम है, सूत्र पिटकके भिन्न-भिन्न भाग दीर्घ आगम, मज्झिम आगम, संयुत्त आगम और क्षुद्रक आगम कहे जाते हैं, पालि वाले उन्हें निकाय नामसे कहना अधिक पसन्द करते हैं, पर सर्वास्तिवाद-स्याद्वादवाले आगम नाम ज्यादा पसन्द करते थे। विनय पिटकको आगम या निकाय नहीं कहा जाता था।

दोनों धर्मोंमें सुत्तका संस्कृत रूप सूत्र

दोनों जगह सुत्त का संस्कृत रूप सूत्र स्वीकार किया गया है, पर वह समय ईसा-पूर्व छठवीं सदी सूत्र कहनेका समय नहीं था, सूत्र उसके बाद रचे गये। उस समय ऋग्वेदके सूक्तका प्रवाह था इसलिये महावीर और बुद्धके मुंहसे निकले सूक्त ही थे, जिन्हें सूत्र कहा गया। जो कि जैन सूत्रागम और बौद्ध सूत्रपिटकके स्थान पर हैं।

सुत्तागम के अंग-उपांगके प्रकारसे दो भेद हैं, उपलब्ध अंगोंकी संख्या निम्न ग्यारह हैं—

आचारः—आयारे, सूत्रकृत्-सूयगडे, स्थानम्-ठाणे, समवायः—समवाये, भगवती = विवाहप्रज्ञप्ति-भगवई-विवाहपण्णत्ती, ज्ञाताधर्मकथा-णायाधम्मकहाओ, उपासकदशा-उवासगदसाओ, अन्तकृद्दशा-अंतगडदशाओ, अनुत्तरोपपातिकदशा-अणुत्तरोववाइयदसाओ, प्रश्नव्याकरण-पण्हावागरणं, विपाकसूत्र-विवागसुयं।

सुत्तागम के भीतर ही ११अंग, १२ उपाङ्ग, ४ छेद, ४ मूल आवश्यक सूत्र सम्मिलित हैं। इस प्रकार अग-उपांग, छेद, मूल तथा आवश्यकसूत्र सहित सारा सुत्तागम ३२ ग्रन्थों का है। बारहवां दृष्टिवाद अंग लुप्त हो गया है, यह परम्परा मानती है। जिन-वचनों के देर से लेखारूढ होनेसे ऐसा होना ही था, पर जो मुनियोंने अपनी स्मृतिमें सुरक्षित रक्खा, उसीके लिये हम उनके ऋणसे उऋण नहीं हो सकते।

ब्राह्मण परम्परा वेद ब्राह्मण आदिके रूपमें हम तक पहुँची, श्रमणपरम्परा भी उससे कम विशाल नहीं थी। जैन और बौद्ध पिटक विशाल हैं, कपिलकी परम्परा षष्ठितन्त्रके रूपमें ईसवी सन्के आरम्भ तक थी, जब कि उसके परवाद और आख्यायिकाके अंशको ईश्वरकृष्णने सांख्य रचीं। कपिल बुद्ध और पालिकालमें तीर्थ नहीं था, इसलिये तत्कालीन तीर्थङ्करोंमें उसका नाम नहीं मिलता। अन्य छः तीर्थङ्करों के नाम आते हैं, जैसे—

जो श्रमण ब्राह्मण संघके अधिपति संघके आचार्य ज्ञात यशस्वी तीर्थङ्कर बहुत जनों द्वारा साधुसम्मत थे, जैसे—पूर्णकाश्यप, मश्करी गोशाल, निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र, संजय वेलट्ठियपुत्र, प्रकुधकात्यायन, अजितकेशकम्बली। वह भी...... सम्बोधिको जान लिया ऐसा दावा नहीं करते। "फिर आप गौतम तो जन्मसे अल्पवयस्क और प्रव्रज्या में नये के लिये क्या कहना?" संयुत्तनिकाय ३।१।१ बुद्धचर्या पृष्ठ ८५।

निग्रन्थ ज्ञातपुत्र की भांति और तीर्थङ्करोंके भी पिटक थे, जो उनके अनुयायियों के साथ लुप्त हो गये। उपरोक्त उद्धरण से यह भी मालूम होता है कि काश्यप ज्ञातपुत्र (महावीर) बुद्धसे आयुमें बड़े थे। सभी श्रमणोंकी परिभाषायें एक सी थीं और विचारोंमें कुछ समानता भी। सभी विचार स्वातन्त्र्यके मानने वाले थे और ब्राह्मणों के साथ उनका शाश्वतिक विरोध था। सभी वर्णव्यवस्था के विरोधी थे। इसीलिये

ब्राह्मण उन्हें वृषल(शूद्र)कहते थे। श्रमणों के समान पारिभाषिक शब्दोंके लिये अन्त की शब्द सूची को देखें, जिसमें बौद्धों और जैनों के सम्मिलित शब्दों के आगे हमने * चिह्न बना दिये हैं।

भिक्षु-भिक्षुणी उपासक और उपासिका तो हैं ही, भिक्षु बननेकी उपसम्पदा का भी एकसा ही शब्द है।

गुरुको दोनों आचार्य उपाध्याय कहते हैं, साधु होके रहना 'ब्रह्म-चर्य पालन करना' काम को पराजित शब्द का प्रयोग दोनों में है। भिक्षा के लिए पिण्डपातका शब्द समान है।

पोषध या उपोसथ भी श्रमणोपासकोंका व्रत है, जो महीने की दोनों अष्टमियों और आमावास्या, पूर्णिमाका दिन होता था। बौद्ध विहारोंमें इसके लिए पौषधशालायें या पोषथागार बनाये जाते थे। वैसे साधारण बौद्ध उपासक जन उन चारों दिनोंमें या कम से कम पूर्णिमा के दिन त्रिशरण और पञ्च शील ग्रहण करते हैं, दिन में भिक्षुओंकी तरह दो पहरके बाद भोजन नहीं करते। और भी समय पूजा और सत्संगमें बिताते हैं।

और भी कितने ही श्रमणों के विधान एक से शब्दों में हैं—

वेरमणी अर्थात् विरत होना, श्रावक और उपासक शब्दका तो इतना प्रयोग हुआ' कि जैन शब्द का पर्याय ही सावक या (बिहार की बराकर नदी के किनारे बसने वाले लोग शराक) और सरा-वगी हो गया। बुद्ध, सम्बुद्ध, तथागत, तायी, अर्हत्, ये सारे विशेषण बुद्ध और महावीर दोनोंके लिए प्रयुक्त होते हैं। बोधि, सम्बोधिकी भी वही बात है। यह सारी समानतायें बतलाती हैं, कि सारे श्रमण किसी एक परम्परा के मानने वाले थे, जिसने कि यह समान शब्द दिये। बुद्ध के पहले किसी ऐतिहासिक बुद्धका पता नहीं लगता, यद्यपि अशोक राजाने बुद्धके पहलेके एक बुद्ध कोनागमन नाम पर एक

स्तम्भ लुम्बिनीके पास निगलिह्वा में स्थापित करवाया था। पर इससे कोनागमनको ऐतिहासिकता सिद्ध नहीं होती, सिर्फ यही मालूम होता है कि अशोकके समय कोनागमन बुद्धका ख्याल प्रचलित था। जैसे बुद्धके साथ २४ बुद्धोंकी बात कही जाती है, वैसे ही महावीरको लेते २४ तीर्थंकरोंकी भी बात जैन परम्परा कहती है। पर वहाँ कम से कम २३ वें तीर्थङ्कर पार्श्वके ऐतिहासिक होनेके जबरदस्त कारण हैं। पार्श्वके अनुयायी श्रावक और श्रमण उस समय मौजूद थे। यहीं सूत्रकृताङ्ग में उदक पेढालपुत्र (।) पृष्ट १३४, १४५ : का संवाद प्रथम गणधर भिक्षु गौतम-इन्द्रभूति से आया है, अन्तमें पेढाल भिक्षु गौतमके प्रवचन से सन्तुष्ट होते हैं और पार्श्वके चातुर्याम संवरके स्थान पर महावीरके पंच महाव्रतिक सप्रतिक्रमण धर्म को स्वीकार करता है। इस प्रकार पार्श्वके अनुयायी भिक्षुओंका होना उस समय सिद्ध होता है। कुछ विद्वान् मानते हैं, कि तीर्थंकर पार्श्व महावीरसे प्रायः दो शताब्दी पहले हुए थे अर्थात् वह ईसा-पूर्व आठवीं सदीमें मौजूद थे। यही समय पुराने उपनिषदोंका है। अर्थात् जिस समय ब्राह्मण पुराने वैदिक कर्मकाण्डके जालको तोड़कर उपनिषद्की अपेक्षाकृत मुक्त हवामें साँस लेनेका प्रयास कर रहे थे, उसी समय श्रमणोंके सबसे पुराने तीर्थंकर स्वतन्त्रताका पाठ दे रहे थे।

उपनिषद् काल से पहले श्रमणोंके अस्तित्वको ले जाना ठोस ऐतिहासिक सामग्री के बल पर मुश्किल है। मोहनजोडरो और हड़प्पाकी संस्कृति वैदिक आर्योंसे अधिक मृदु, अधिक अहिंसापरायण रही होगी, इसकी सम्भावना कम है। मानव धीरे-धीरे हिंसासे अहिंसाकी ओर आया। ताम्रयुग नरमेधोंका युग था, लौहयुगमें हिंसाके लिए अधिक सक्षम था, इसलिए कोमल हृदयोंने हिंसाका विरोध किया। ईसा पूर्व आठवीं सदी लौहयुगका आरम्भ थी।

बुद्धने वर्षामें भिक्षुओंकेलिए अधिक प्राणियों की हिंसा होनेके डरसे

यातायात बंद कर एक जगह वर्षावास करने का नियम बनाया, इसमें श्रमणोंकी परम्परा भी कारण थी, एक इन्द्रिय जीवोंकी हिंसा होनेके डरसे तृण वनस्पतिके काटनेसे भिक्षुओंको रोका, यह भी पुरानी श्रमण परम्परा का ख्याल था। श्रमण परम्पराओंमें भेद भी थे, पर साथ ही कुछ समानतायें भी थीं।

सूत्रकृताँग ११ विद्यमान अंगोंमें दूसरा है। इसके कुछ अंश पद्य और कुछ गद्य में हैं। जैन दृष्टिसे ध्यान-शील और आध्यात्मिक तत्व-ज्ञान जानने के लिए यह सूत्र वहुत उपयोगी है। तत्वज्ञानकेलिए यहां भी बौद्धों की तरह ही बोधि और सम्बोधिका प्रयोग किया जाता है। यहाँ २।१।१ में आया है कि—"किं न बुज्झह संबोही।" समवायाङ्ग ३।२२।७ में बोधि के तीन प्रकार बतलाये हैं—"णाण-बोही, दंसणबोही, चरित्तबोही।" बोधिप्राप्त पुरुषोंको बुद्ध कहते हैं। वह भी तीन प्रकारके होते हैं—

तिविहा बुद्धा, णाणबुद्धा, दंसणबुद्धा, चरित्तबुद्धा, समवायाँग ३।२। २०७॥

शाम के वक्त बौद्ध विहारों में कुछ स्तुति गाथायें पढ़ी जाती हैं, जिनमें एक इस प्रकार है—

ये च बुद्धा अतीता च, ये च बुद्धा अनागता।
पच्चुपपन्ना च ये बुद्धा, अहं वंदामि ते सदा॥

पालि के किस ग्रन्थसे इसे लिया गया, इसका ढूँढ़ने पर भी पता नहीं लगा। ऐसी ही एक गाथा सूत्रकृताङ्ग में है—

जे य बुद्धा अतिक्कन्ता, जे य बुद्धा अणागआ॥ १।११।३६॥

महावीर और बुद्ध लोककल्याण के लिए बराबर घूम-घूम कर उपदेश देते रहे। बौद्ध पिटकमें पर्यटनकी भूमिको मध्यमण्डल कहा गया है। विनयपिटककी अट्ठकथामें मध्यमण्डल की सीमाके बारेमें लिखा है—

बुद्धचारिका: बुद्धोंका घूमना: बुद्धोंका आचार है। वर्षावास समाप्त कर प्रवारणा:क्वार पूर्णिमा: करके लोकसंग्रहके लिए देशाटन करते हुए महा-मण्डल, मध्यमण्डल, अन्तिममण्डल इन तीन मण्डलों में से एक मण्डलमें चारिका करते थे। महा-मंडल नौ सौ योजनका है, मध्यमंडल ६०० योजन का और अन्तिम मंडल ३०० योजन का।

जातकट्ठकथा में निदान (।) में मध्यदेश की सीमा दी है—

मध्यदेश की पूर्व दिशा में कजंगल नामक कस्बा है, उसके बाद बड़े शाल (।) वन हैं और फिर आगे सीमान्त देश है। मध्यमें सललवती नामक नदी है, उसके आगे सीमान्त देश······है। दक्षिण दिशा में सेतकण्णिक नामक कस्बा है, उसके बाद सीमान्त देश है। पश्चिमदिशामें थून नामक ब्राह्मणोंका ग्राम है उसके बाद ···सीमान्त देश है। उत्तरदिशामें उशीरध्वज नामक पर्वत है, उसके बाद.. ...सीमान्त प्रदेश······है। यह लम्बाई में ३०० योजन, चौड़ाई में २५० योजन, और घेरेमें ९०० योजन है। यहाँ उल्लिखित स्थानोंमें कजङ्गल वर्तमान कंकजोल जिला संथाल पर्गनामें है। सललवती नदी हजारी बाग जिलेकी सिलई नदी मालूम होती है। पश्चिमी सीमाके थून ब्राह्मण-ग्रामको आजकल थानेसर कहा जाता है। यही मध्य जनपद भगवान् महावीर की भी विचरण-भूमि रहा होगा।

दोनों की विचरण-भूमि के ग्राम भी कितने ही एक से आजकल कम प्रसिद्ध पर पहले बहुत प्रसिद्ध कुछ प्रसिद्ध स्थान हैं—

आलम्भिया इसे आलविया पालिमें कहा गया है, और यह भी कि यहां के प्रसिद्ध यक्षको पंचालचण्ड कहा जाता था। अर्थात् इसे पंचालदेश: रुहेलखंड या आगरा कमिश्नरीमें ढूंढ़ना होगा, वैसा स्थान कानपुरके पश्चिमी छोर पर अवस्थित आजकलका अरवल है।

कम्पिलाका भी जैनागमोंमें उल्लेख है, पालिमें भी इसे कम्पिला कहते हैं। पंचालकी पुरानी राजधानी काम्पिल्य आज एटा जिले का कम्पिल कस्बा है।

श्रमण-ब्राह्मण शब्दोंका प्रयोग मुनि-संयमीकेलिए यहां बहुत आया है। बौद्ध-धम्मपद में तो एक सारा वर्ग ब्राह्मण वग्ग है, वहाँ भी ब्राह्मण इसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ। अभी वह ब्राह्मणोंकी एक जाति-केलिए रूढ़ नहीं बनाया गया था। पर पाणिनिके समय ईसा पूर्व चौथी सदीमें ब्राह्मण श्रमणोंके शाश्वत विरोधी बन गये थे। इसी-लिए जैन अनुवादक या टीकाकार ब्राह्मण शब्द से जाति ब्राह्मणका भ्रम न हो जाये, इसीलिए उसके ठीक अर्थको देते हैं। हमने सदा उसी शब्दको रक्खा है, क्योंकि अब भ्रम करनेका ज़माना बीत चुका है।

बुद्ध और महावीर दोनोंकी वाणी अपनी सरलता और स्पष्टताके कारण बड़ी मधुर मालूम होती है। अनुवादको मैंने सरल करनेकी कोशिश की है। वह और भी सरल हो सकता था, यदि मेरे पास समयकी कमी न होती।

सिंहल द्वीप
४-१२-६०

राहुल सांकृत्यायन

विषय-सूची

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

सूत्रकृताङ्ग

पहला-श्रुतस्कन्ध

समयअध्ययन १

१ उद्देशक

१—स्वसिद्धान्त

(१) वूझे, खूव जानकर वन्धन को तोडे। (महान्) वीरने किसे वन्धन वताया, किसे जानकर (वन्धन) टूटता है ? ॥१॥

(२) (जो पुरुष) सप्राण या निष्प्राण किसी छोटे(पदार्थ)को भी फँसाता है, या दूसरे को (वैसा करनेकी) अनुमति देता है वह (संसार-) दुःखसे नहीं छूटता ॥२॥

(३) प्राणियोंको अपने आप मारता है, या दूसरेसे मरवाता है। या मारने वालेको अनुज्ञा देता है, वह अपने वैर को वढ़ाता है ॥३॥

(४) आदमी जिस कुल में पैदा हुआ, या जिनके साथ रहता है, (उनमें) ममता करता वह अजान हुआ दूसरोंके मोहमें पड़कर वर्वाद होता है ॥४॥

(५) धन और सहोदर(भाई-वहिन) ये सारे(आदमीको)नहीं वचा सकते, जीवनको भी ऐसा (थोडा) समझकर कर्म (के वन्धन) से अलग होता है ॥५॥

(६) इन ग्रन्थ (वचनों)को छोड़कर कोई-कोई अजान श्रमण-ब्राह्मण

(मतवादी) (अपने मतमें) अत्यन्त वंधे काम भोगोंमें फंसे हैं ॥६॥

२—लोकायत-भौतिकवाद—

(७) कोई कहते हैं...."यहाँ पाँच महाभूत हैं—(१) पृथिवी, (२) जल, (३) अग्नि), (४) वायु और पांचवां आकाश।" ॥७॥

(८) ये पांच महाभूत हैं, तिनमेंसे एक (चेतना पैदा) होती है फिर उन (महाभूतों) के विनाशसे देहधारी (आत्मा) का भी विनाश होता है ॥८॥

अद्वैत—

(९) जैसे एक पृथिवी समुदाय एक (होते भी) अनेक दीखता है, ऐसे ही विद्वान् सारे लोकको नाना देखता है ॥९॥

(१०) ऐसे कोई-कोई मन्द एक (आत्मा) बतलाते हैं। कोई स्वयं पाप करके भारी दुःख भोगते हैं ॥१०॥

३—भौतिकवाद—

(११) मूढ हों या पण्डित प्रत्येक में पूर्ण आत्मा है, मरने पर होते भी नहीं होते भी (परलोक में) जाने वाला कोई नित्य पदार्थ नहीं हैं ॥११॥

(१२) न पुण्य है, न पाप है, इस (जन्म) के बाद दूसरा लोक नहीं, शरीरके विनाशसे शरीरधारी (आत्मा)का भी विनाश हो जाता है ॥१२॥

४—आत्मा अकर्ता—

(१३) सब करते और कराते भी करनहार नहीं है, इस प्रकार आत्मा अकारक है, ऐसा वे ढीठ (कहते) हैं ॥१३॥

(१४) जो ऐसे (मतके) माननेवाले हैं, उनके लिए (पर-)लोक कैसे होगा ? वे हिंसा-रत मन्द(-बुद्धि) अन्धकारसे भारी अन्धकारमें जाते हैं ॥१४॥

५—नित्य आत्मा—

(१५) यहां कोई-कोई कहते हैं—(पृथिवी आदि, पांच महाभूत हैं, आत्मा छठा है; फिर कहते हैं कि आत्मा और लोक नित्य है ।।१५ ।

(१६) दोनों (कभी) नहीं नष्ट होते, और न अ-सत् (वस्तु) से कोई (वस्तु) उत्पन्न हो सकती है । सारे ही पदार्थ सर्वथा नियति रूपसे (चले) आये हैं ।।१६।।

६—बौद्ध मत—

(१७) कोई-कोई मूढ कहते हैं···पांच स्कन्ध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) क्षणिक (तत्व) हैं । (आत्मा) उनसे भिन्न है या अभिन्न, स-कारण है या अ-कारण यह नहीं वतलाते ।।१७।।

(१८) दूसरे कहते हैं···पृथिवी, जल, तेज और वायु ये एकत्र चार धातुओंके रूप हैं ।।१८।।

७—अन्यमत—

(१९) घरमें या अरण्य या पर्वतमें वसते (हमारे) इस दर्शन पर आरूढ (पुरुप) सारे दुःखों से छूट जाता है ।।१९।।

(२०) उन (मतवादियों) ने न (द्रव्य या मानसिक भावों की) सन्धि जानी, न वे धर्मवेत्ता हैं । वे जो ऐसा मानते हैं, वे (संसार रूपी) वाढसे पारंगत नहीं कहे गये ।।२०।।

(२१) वे न सन्धि जानते, न वे लोग धर्मवेत्ता हैं, वे संसार पारंगत नहीं कहे गये ।।२१।।

(२२) ० गर्भ (आवागमन) पारग नहीं कहे गये ।।२२।।

(२३) ० जन्म पारग नहीं कहे गये ।।२३।।

(२४) ० दुःख पारग नहीं कहे गये ।।२४।।

(२५) ० मार (मृत्यु) पारग नहीं कहे गये ।।२५।।

(२६) मृत्यु, व्याधि और जरासे व्याकुल संसारके चक्रवालमें वे पुनः पुनः नाना प्रकारके दुःख भोगते हैं ॥२६॥

(२७) जिन श्रेष्ठ ज्ञातपुत्र महावीर ने यह कहा है कि वे अनन्त वार ऊंची-नीची (योनियों) गर्भमें जायेंगे ॥२७॥

—०—

दूसरा उद्देशक

*१—नियतिवाद–

(२८) कोई-कोई कहते हैं कि जीव अलग-अलग उत्पन्न हैं, वे सुख-दुःख सहते हैं, अथवा मूल से लुप्त हो जाते हैं ॥१॥

(२९) वह दुःख न स्वयं किया हुआ है, फिर दूसरे का किया क्या होगा ? सुख हो या दुःख, इह लौकिक हो या पारलौकिक (सब की यही बात है) ॥२॥

(३०) न अपने न परके किए कर्मको जीव अलग-अलग भोगते हैं। ऐसा उनका नियत (भाग्य) कृत है। यहाँ यह किसी (नियतिवादी आजीवक) का मत है ॥३॥

(३१) (सुख दुःख) नियत है या अनियत इसे न जानते, निर्बुद्धि अपने को पण्डित समझने वाले मूढ वैसा इसे बतलाते हैं ॥४॥

(३२) ऐसे कोई-कोई बंधुये और भी ढिठाई करते हैं, ऐसे (अपने मत पर) आरूढ वे दुःखपारंगत नहीं हैं ॥५॥

२—अज्ञानवाद—

(३३) वेगसे दौड़ने वाले हरिन जैसे रक्षाविहीन होते हैं, वे अशंकनीय पर शंका करते, शंकनीय पर नहीं शंका करते ॥६॥

---

* मंखली गोशालाके अनुयायी-आजीवक।

(३४) रक्षाकारकों पर शंका करते, फंदे वालों पर शंका नहीं करते। अज्ञानके भयसे उद्विग्न जहाँ-तहाँ भागते हैं ॥७॥

(३५) फिर (वह मृग) चाहे वन्धनको फाँद जाये, वन्धनके नीचेसे निकल जाय, अथवा पैर के फंदे से छूट जाये; पर वह मन्दवुद्धि उसे नहीं जानता ॥८॥

(३६) अहित ज्ञानवाला अपने ही अहित, प्रतिकूल स्थानमें पहुँचा, पैरके फंदेमें फसा घातको प्राप्त होता है ॥९॥

(३७) ऐसे ही कोई-कोई मिथ्यादृष्टि अनार्य श्रमण (भिक्षु) अशंकनीयसे भय खाते हैं, शंकनीयसे भय नहीं खाते ॥१०॥

(३८) धर्मका जो निरूपण है, उससे तो मूढ़ भय खाते हैं, पर वे अपण्डित = अव्यक्त हिंसासे नहीं भय खाते ॥११॥

(३९) सर्वात्मक(रूपी लोभ), उत्कर्ष (रूपी अभिमान), सारी माया, अप्रत्यय (अविश्वास रूपी) क्रोधको छोड़कर कर्मांशसे रहित होता है, इस वातको मृग(सा मूढ) छोड़ देता है ॥१२॥

(४०) जो मिथ्यादृष्टि अनाडी इसे नहीं जानते, वे मृगकी भाँति फन्देमें वधे, अनन्तवार घातको प्राप्त होंगे ॥१३॥

(४१) कोई-कोई ब्राह्मण और श्रमण सारे, अपने ज्ञान को वखानते हैं, पर, सारे लोकमें जो प्राणी हैं, उसे कुछ नहीं जानते ॥१४॥

(४२) म्लेच्छ जैसे म्लेच्छ-भिन्न आर्य)के कथनका अनुकरण करे, वह हेतु (अर्थ) को नहीं जानता, केवल भाषितका अनुभाषण करता है ॥१५॥

(४३) इसी प्रकार अज्ञानी अपने-अपने ज्ञानको वोलते भी, ठीक अर्थको नहीं जानते, जैसे-अज्ञानवाला म्लेच्छ ॥१६॥

(४४) अज्ञानियोंका विमर्ष (अपने पक्ष) अज्ञानका निश्चय नहीं कर

सकता। अपने भी जब परको (नहीं समझा सकता) तो दूसरेको (अन्य ज्ञान) कैसे सिखलायगा ॥१७॥

(४५) वनमें जैसे मूढ(दिशाभ्रान्त)प्राणी(दूसरे, मूढका अनुगामी हो, तो दोनों अजान भारी शोक को प्राप्त होंगे ॥१८॥

(४६) अन्धा (दूसरे) अन्धेको पथ पर ले जाता दूर रास्ते जा रहा है, तो (वह) जन्तू उत्पथको प्राप्त होगा, या (दूसरे) पथका अनुगामी होगा ॥१९॥

(४७) ऐसे ही कोई मोक्षके इच्छुक (कहते हैं)"'हम धर्मके आराधक हैं, पर, वे अधर्ममें पहुँचेंगे, सबसे सीधे (मार्ग) पर नहीं जायेंगे ॥२०॥

(४८) ऐसे ही कोई अपने वितर्कोंसे दूसरे की सेवा नहीं करते, अपने ही वितर्कोंसे "यह ठीक (मार्ग) है," वह दुर्मति समझते हैं ॥२१॥

(४९) धर्म-अधर्मके पण्डित ऐसे तर्कसे साधते उसी तरह दुःखको पूरी तरह नहीं तोड़ सकते, जैसे (फँसी) चिड़िया पिंजड़ेको ॥२२॥

(५०) अपने-अपनेको प्रशंसते दूसरेके वचनको निन्दते, जो वहाँ पण्डिताई झाड़ते हैं, वे संसार में बिल्कुल बंधे हुये हैं ॥२३॥

३—क्रियावाद—

(५१) इसके बाद पूर्वोक्त क्रियावादी दर्शन है, (वह) संसारको बढ़ानेवाले कर्मके चिन्तनसे भ्रष्टों का (दर्शन) है ॥२४॥

(५२) जानते हुये भी कायासे हिंसा नहीं करता, और न जानते हुये हिंसा करता है, तो वह कर्म (फल) लगा अनुभव करेगा, पर वह दोषयुक्त स्पष्ट नहीं होगा ॥२५॥

(५३) ये तीन आदान (कर्म बन्धनके कारण) हैं, जिनसे (आदमी) पाप करता है—

(१) स्वयं हिंसाके लिये आक्रमण कर, (२) दूसरेको भेजकर, और (३) मनसे अनुमति देकर ॥२६॥

(५४) ये तीन उपादान हैं, जिनसे (आदमी) पाप करता है, इस प्रकार भाव (चित्त) की शुद्धिसे निर्वाणको प्राप्त करता है ॥२७॥

(५५) अ-संयमी पिता (आपत् में) पुत्र को मारकर जो खाये, तो कर्मसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही मेधावी भी (ऐसा अन्य दार्शनिकोंका मत है) ॥२८॥

(५६) जो मनसे (प्राणी पर) द्वेष करते हैं उनका चित्त (शुद्ध) नहीं है, उनकी निर्दोषता झूठी है, वह संवर (ब्रह्म)चारी नहीं है ॥२९॥

(५७) इसप्रकारकी इन दृष्टियों (=मतों) से सुख-सम्मानमें बंधे, "हमारा दर्शन शरण है" यह मानते लोग पापका सेवन करते हैं ॥३०॥

(५८) जैसे खूब टपकती नाव पर चढकर (कोई) जन्मान्ध पार जाना चाहे, तो वह बीचमें ही डूबेगा ॥३१॥

(५९) इसी तरह कोई-कोई मिथ्यादृष्टि, अनाडी, संसार पार जाने के इच्छुक श्रमण संसारमें ही चक्कर खाते रहते हैं ॥३२॥

३—उद्देशक

१—कर्म भोग—

(६०) श्रद्धालु गृहस्थने अतिथि (श्रमण) के लिए इच्छित जो कुछ भी पूतिकृत (पका तैयार किया) है, उसे हजार घर की दूरी पर बँटने पर भी (जो) खाये, वह (साधु-गृहस्थ) दोनों के पक्षका सेवन करता है ॥१॥

(६१) उसी (आधाकर्म*) को न जानते विषम (स्थिति) को न

*भिक्षुके लिये बनाया आहार।

जान (दूसरे मतवाले) पानीके वढावमें विशाल मछलियोंकी भांति है ॥२॥

(६२) जलके प्रभावसे सूखे-गीलेमें पहुंच (मछली) आमिपार्थी चील्हों और कौओंसे पीडित होती हैं ॥३॥

(६३)वैसे ही वे वर्तमान सुख चाहनेवाले(श्रमण),विशाल मछलियोंकी भाँति अनन्त वार घातको प्राप्त होंगे ॥४॥

२—जगत्कर्ता—

(६४) यहां किसी-किसीने यह दूसरा अज्ञान वखाना है—देव द्वारा वनाया गया यह लोक है, दूसरे (कहते)हैं व्रह्मा द्वारा रचा गया है ॥५॥

(६५) ईश्वर द्वारा उत्पादित है, दूसरे (कहते) प्रकृति द्वारा जीव अजीव सहित सुख-दुःख-युक्त यह लोक ॥६॥

(६६) महर्पि ने कहा —स्वयम्भूने लोक वनाया,मार (यमराज) ने माया तैयार की,उसीसे लोक अनित्य है ॥७॥

(६७) कोई-कोई श्रमण व्राह्मण जगत्को अण्डेसे वना वतलाते हैं, उस (व्रह्मा,ने तत्व वनाया-यह विना जाने ही झूठ वोलते हैं ॥८॥

(६८) अपनी मनगढ़न्तोंसे लोकको वना वतलाते हैं,वे तत्वको नहीं जानते । कभी भी (लोक-अत्यन्त) विनाशी नहीं है ॥९॥

(६९) दुःखको वुरी उत्पत्तिका कारण जानना चाहिए,उत्पत्तिको विना जाने कैसे संवर (संयम) को जान पायंगे ॥१०॥

(७०) कोई-कोई कहते हैं—आत्मा शुद्ध निष्पाप है । फिर क्रीडा के दोपसे वह दोप-युक्त होता है ॥११॥

(७१) यहां मुनि संवर युक्त हो निष्पाप होता है, जैसे जल, जो (कभी) रजसहित और (कभी) रजरहित होता है ॥१२॥

(७२) ऐसे इन (मतों) को जानकर मेधावी उनमें व्रह्मचर्यवास न

करे, वे सारे प्रवादी अपने-अपने (मत) का (झूठा) बखान करते हैं ॥१३॥

३—शैवआदिमत—

(७३) अपने-अपने (शीलके) अनुष्ठानसे ही सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं। इसलिये यदि इंद्रिय (वशी) हो जाये तो सारी कामनायें पूरी हो जायें ॥१४॥

(७४) कोई-कोई कहते हैं—सिद्ध रोग रहित होते हैं। (इसलिये) सिद्धिका ही खयाल करके अपने मत में आदमी गुंथे हुए हैं ॥१५॥

(७५) संवरहीन जन अनादिकाल तक पुनः पुनः चक्कर काटते रहेंगे, असुरोंके पापयुक्त (नरक) स्थान में कल्पकाल तक पैदा होंगे ॥१६॥

४ उद्देशक, १—(पर मत)—

(७६) हे, ये (दूसरे मतवाले) पण्डित मानी मूढ (काम आदिसे) पराजित हैं, शरण नहीं हैं। (ये तो) पहलेके (गृही) बन्धनको छोडकर उसीको (फिरसे) उपदेशते हैं ॥१॥

(७७) इसे विद्वान् भिक्षु जानकर उनमें लिप्त न हो, अभिमान और लीनता छोड मध्यम प्रकारसे वर्ताव करे ॥२॥

(७८) कोई कहते हैं—यहाँ (मोक्षमें) परिग्रह-युक्त हिंसारत (जाते हैं), पर, भिक्षु परिग्रह-रहित हिंसाविरतकी शरणमें जाये ॥३॥

(७९) (दूसरेके) बनाये में कौर पाना चाहे, विद्वान् दिये (आहार को) लेना चाहे, बे-चाह और मुक्त(चित्त)होकर भी (दूसरेका) अपमान न करे ॥४॥

२ लोकवाद—

(८०) कोई कहते हैं—लोक में (प्रचलित) वादको सुनना चाहिये, पर वह तो उलटी बुद्धिकी उपज है, और दूसरोंके कहेका अनुगामी (होना) है ॥५॥

(८१) लोक अनन्त, नित्य, शाश्वत, नहीं विनसेगा, लोक अन्तवान् नित्य है, यह धीर (पुरुष) देखता है ॥६॥

३ सदाचार उपदेश—

(८२) कोई कहते हैं—यहां अपरिणाम ज्ञानवाला (कोई) है। सर्वत्र परिणामवाला है, ऐसा धीर देखता है ॥७॥

(८३) जो कोई जंगम या स्थावर प्राणी रहते हैं, उनका पर्याय (रूपान्तर) अवश्य होता है, जिससे वे त्रस-स्थावर हैं ॥८॥

(८४) जगत् (के जीवों) का योग स्थूल है, वे उलटे (रूप) को प्राप्त होते हैं, कोई दुःख पसंद नहीं करता, इसलिये किसीकी हिंसा न करे ॥९॥

(८५) यही ज्ञानियों(के वचन)का सार है, कि किसी की हिंसा न करे, अहिंसा और समता (बस) इतना जानना चाहिये ॥१०॥

(८६) साधुसामाचारी (ब्रह्मचर्य) में बसा, बे-चाह, (ज्ञान-दर्शन-चारित्र तीनों के व्रत-) आदानकी ठीकसे रक्षा करे। चलने-बैठने-सोने, यहाँ तक कि खान-पानमें भी (संयम करे) ॥११॥

(८७) उक्त तीनों स्थानोंमें मुनि निरन्तर संयमयुक्त रहे, अभिमान, कोप, माया और लोभ न रक्खे ॥१२॥

(८८) साधु सदा (पांचों) समितियोंसे युक्त, पांच संवरोंसे संवरित रहे। (बंधु-बान्धवके सम्बन्धोंमें) न बंधा भिक्षु मोक्षतकके लिए प्रव्रजित होवे ॥१३॥

वेतालीय-अध्ययन २

१. उद्देशक

१. कर्मभोग—

(८९) समझो, क्यों नहीं समझते, मरनेके बाद संबोधित (समझना) दुर्लभ है। बीती रातें नहीं लौटेंगी, फिर (संयम) जीवन सुलभ नहीं होगा ।।१।।

(९०) देखो, बालक, बूढ़े और गर्भस्थ मानुष भी मर जाते हैं। जैसे बाज बत्तकको पकड़ता है, ऐसे ही आयु क्षय होने पर (जीवन) टूट जाता है ।।२।।

(९१) माता-पिता द्वारा कितने बर्बाद किये जाते हैं, मरनेपर सुगति सुलभ नहीं। इन भयोंको देखकर,सुव्रत(जन)हिंसा से विरत हो जाये ।।३।।

(९२) जगत्में प्राणी अलग-अलग (अपने) कर्मोंसे बर्बाद होते हैं, अपने किये से पकडे जाते हैं, उसे भोगे विना नहीं छूटते ।।४।।

(९३) देव, गन्धर्व, राक्षस, असुर, स्थलचर, रेंगनेवाले जन्तु, राजा, नगरसेठ, ब्राह्मण, सभी स्थानसे च्युत होते हैं ।।५।।

(९४) कामभोगों और स्त्री संसर्गमें लोभी जन्तु, काल पाकर कर्म-फल भोगते हैं। बन्धनसे टूटे ताल (फल) की भान्ति आयु-क्षय होने पर (जीवन) टूट जाता है ।।६।।

(९५) चाहे बहुश्रुत हो, या धार्मिक ब्राह्मण, भिक्षु हो। (सभी) मायामें फंसे वे कर्मों द्वारा खूब कुतरे जाते हैं ।।७।।

(९६) देखो, वैराग्यमें तत्पर,-विना-पार हुए (जन) मोक्ष बखानते हैं, आर पार को तू कैसे जानेगा, बीचमें कर्मों द्वारा कुतरा जायगा ।।८।।

(९७) चाहे नंगा दुवला-पतला विचरे, चाहे मास बीतने पर भोजन करे। जो यहाँ मायामें फंसा है,वह अनन्त वार गर्भमें आयेगा ॥९॥

(९८) हे पुरुप ! पापकर्मसे विरत हो, मनुजोंका जीवन अन्तवाला है। वंधे, कामोंमें लिप्त, संवरहीन आदमी मोहको प्राप्त होते हैं ॥१०॥

१. संयमका जीवन—

(९९) यत्नशील, योगयुक्त हो तू विहार कर, सूक्ष्म जन्तुओंवाला दुस्तर पंथ है। (वह)वीर ने ठीकसे वतला दिया है, उसी अनुशासन पर चल ॥११॥

(१००) विरत, उत्थानयुक्त, क्रोध-माया आदिसे दूर वीर, सर्वथा प्राणियोंको नहीं मारते। (जो)पापसे विरत हैं, वे निर्वाण-प्राप्त हैं ॥१२॥

(१०१) (साधन) सहित पुरुप ऐसा देखे—मैं ही इन अभावोंका शिकार नहीं हूं, लोकमें दूसरे प्राणी भी वर्वाद हो रहे हैं। आयत् पड़ने पर उद्वेग रहित हो उन्हें सहे ॥१३॥

(१०२) भीतके लेपको उखाड़ने की तरह अनशन आदिसे देह (विकार) को कृश करे, अहिंसा का ही पालन करे, मुनि (ने) यही धर्म वतलाया है ॥१४॥

(१०३) धूलसे भरी चिड़िया जैसे कम्पनकर अपनी धूलको हटा फेंकती है, ऐसे ही सारवान् उपवासादि तपयुक्त हो तपस्वी ब्राह्मण कर्मको क्षीण करता है ॥१५॥

(१०४) अपने लक्ष्यमें दृढ़ अन्-आगारिक तपस्वी श्रमणको (परिवारके) तरुण, वृद्ध प्रार्थना करते चाहे सूख भी जायें, पर उसे (घर) न (लौटा) पायें ॥१६॥

(१०५) चाहे करुण (दृश्य उपस्थित) करें, चाहे पुत्रके लिए रुदन करें, तो भी परमार्थ परायण-भिक्षुको घरमें नहीं रख सकेंगे ॥१७॥

(१०६) चाहे भोगका प्रलोभन दें, चाहे बांधकर घर ले जायें, यदि वह असंयत जीवनसे बचा है, तो उसे (घरमें) नहीं रख सकेंगे ॥१८॥

(१०७) ममता रखनेवाले माता-पिता, सुत भार्या सीख देते हैं—तुम तो दूरदर्शी हो, हम अशरणोंको पालो, परलोकको बिगाड़ रहे हो, अतः हमें पोसो ॥१९॥

(१०८) दूसरे (अपनों) में आसक्त संवर-हीन नर मोह में फंस जाते हैं, बन्धुओं (द्वारा) विषम (चर्या) में फंसाये जाने पर फिर ढीठ बन जाते हैं ॥२०॥

(१०९) इसलिए तू पण्डित, परमार्थ देख। पापसे विरत, शान्त हो, वीर महापथको पाते हैं, जो अचल सिद्धिपथको ले जाता है ॥२१॥

(११०) मन-वचन-कायासे संवर युक्त हो, वेतालीय (विदारक) मार्ग पर आरूढ़ (भिक्षु) धन-परिवार-आरम्भको छोड़ सुसंवर युक्त हो विचरै ॥२२॥

---

२. उद्देशक

१. भिक्षुजीवन—

(१११) जैसे (सर्प) केंचुल छोड़ देता है, वैसे ही (आठ) रजोंको (छोड़े)। ऐसा सोच ब्राह्मण (मुनि) जाति-गोत्रका अभिमान नहीं करता-दूसरे की निन्दा बुरी समझ उसे नहीं करता) ॥१॥

(११२) जो दूसरे जनको अपमानित करता है, वह संसारमें बहुत्र भ्रमता है। परनिन्दा पापिनी है, यह जान मुनि मद नहीं करता ॥२॥

(११३) चाहे स्वामी-रहित (चक्रवर्ती) हो, अथता सेवकका भी सेवक। जो मुनि-मार्गपर स्थित है, वह न लजाये, सदा समताका आचरण करै ॥३॥

(११४) विशुद्ध श्रमण यावत् जीवन किसी संयममें (स्थित) प्रव्रज्या लेकर द्रव्य-भूत पण्डित कथासमाप्ति (मृत्यु) तक वैसा रहे ॥४॥

(११५) मुनि दूर (मोक्ष) को अतीत या भविष्यकी (बातों) को देखे, कठोर (यातनाओंको) भोगता, मारा जाता भी ब्राह्मण समय (संयमव्रत) पर चले ॥५॥

(११६) सम्पूर्णप्रज्ञ मुनि सदा आठरज (चित्तमलों) को जीते, समता धर्मका उपदेश करे, संवरके सम्बन्धमें सदा बेरुख न रहे, ब्राह्मण (मुनि)को मानी नहीं (होना चाहिये) ॥६॥

(११७) बहुजन द्वारा प्रणम्य (धर्म) में संवर युक्त सभी अर्थोंमें अनासक्त रहे। काश्यप (भगवान्) के धर्मको निर्मल सरोवर सा प्रकट करे ॥७॥

(११८) अलग-अलग बहुतसे प्राणी (दुनियामें) हैं, प्रत्येकको समता से देख, जो मुनिपद पर स्थित है, वह पण्डित, उनमें (लोगोंसे) हिंसा-विरति कराये ॥८॥

(११९) धर्ममें पारंगत हिंसाके अन्त-अभावमें स्थित (पुरुष) मुनि कहलाता है। ममतावाले (जन) शोक करते हैं, (जब) अपने (वस्तु-) परिग्रहको नहीं प्राप्त करते ॥९॥

(१२०) (धन-कुल-परिवार) इस लोकमें भी दुःखद हैं। परलोकमें भी दुःख-दुःखद हैं। वह ध्वंस स्वभाववाले हैं, ऐसा जान कौन घरमें रहेगा ॥१०॥

(१२१) जो यह वन्दना-पूजना है,यह महा कीचड़ है। यह कठिनाई से निकलनेवाला कांटा है, अतः विद्वान्को सम्मान का त्याग करना चाहिए ॥११॥

(१२२) वचन पर संयम, मन पर संयम, तपमें पराक्रमी हो भिक्षु अकेला विचरे-ठहरे, अकेला शयन-आसन रक्खे तथा ध्यानयुक्त रहे ॥१२॥

(१२३) संयमी (भिक्षु) (अपने निवासवाले) शून्य घरका द्वार न बंद करे, न खोले, पूछनेपर न बोले, घरमें झाडू न दे, न घास विछाये ॥१३॥

(१२४) (चलते-चलते जहाँ सूर्य) अस्त हो, वहीं मुनि ऊबड़-खाबड़ (भूमि) को विना आकुल हुए स्वीकार करे, चाहे वहां कीट-मच्छर या (सांप-विच्छू जैसे) सरीसृप अथवा भैरव (भूत) आदि हों तो भी ॥१४॥

(१२५) तिर्यग्-पशु-पक्षी, मनुष्य और दिव्य तीन प्रकारके उपसर्गों (वाधाओं) को सिर माथे चढाये। शून्यागारमें रहनेवाला महामुनि रोमांच न करे ॥१५॥

(१२६) न जीवनकी आकांक्षा करे, न पूजाका इच्छुक हो। उसे शून्यागारविहारी भिक्षुको भैरव अभ्यस्त हो जाते हैं ॥१६॥

(१२७) सिद्धिके अत्यन्त समीप पहुँचे, तायी (त्राणकर्ता) एकान्त आसन सेवी मुनिका यह सामायिक(चर्या) कहा गया है, कि अपनेको भय न दिखलाये ॥१७॥

(१२८) गरम जल, ताते भोजनको लेनेवाले, धर्ममें स्थित, लज्जालु मुनिको राजाओंका संसर्ग अच्छा नहीं, क्योंकि उससे तथागत (मुनि) की समाधि नहीं रहती ॥१८॥

(१२९) झगडा (अधिकरण करनेवाले, अति कठोर बोलनेवाले भिक्षुका (परम) अर्थ नष्ट हो जाता है, अतः पण्डितोंको झगड़ा नहीं करना चाहिए ॥१९॥

(१३०) विना औटे जलसे जुगुप्सा करनेवाले-कामना रहित, बन्धन वाले कर्मोंसे दूर रहने वाले, भिक्षुकी यह सामायिक चर्या है, जो कि गृहीके पात्रमें भोजन नहीं खाता ॥२०॥

(१३१) (टूटा) जीवन नहीं जोडा जा सकता, तो भी मूढ जन फूलता है, मूढ पापोंमें लिप्त होता है, यही समझ मुनि मद नहीं करता ॥२१॥

(१३२) बहुत मायावाली, मोहसे ढँकी यह जनता स्वेच्छासे (नरकमें) पडती है। निष्कपट ब्राह्मण (मुनि) संवरमें लीन रहता है वचन (मन और काय) से शीत-उष्णको सहन करता है ॥२२॥

(१३३) न-हारा जुआडी जैसे चतुर जुआडी के साथ पासोंसे खेलता, चौथे को ही लेता, एक्के-दूजे-तीजेको नहीं लेता ॥२३॥

(१३४) इस प्रकार लोकमें तायी (महावीर) ने जो अनुपम धर्म कहा, उसे ग्रहण करें, बाकीको हटा वह चौकेकी भांति ही उत्तम हितू है ॥२४॥

१३५) यहाँ मैं नेसुना है—ग्रामधर्म (मैथुनादि) दुर्जित कहे गये हैं, पर (महावीर) के धर्मके अनुगामी पराक्रमी (भिक्षु) उससे विरत हैं ॥२५॥

(१३६) ज्ञातृ-पुत्र-महान्-महर्षि द्वारा कहे गये इस धर्म पर जो आचरण करते हैं, वह उट्ठित निरालस, व समुट्ठित हैं, एक दूसरेसे धर्मानुसार सारण (व्यवहार) करते हैं ॥२६॥

(१३७) पहलेके भोगे भोगोंकी ओर न देखे, उपाधि (आठ रजोंको) धुन डालनेकी कामना करे। जो मन बिगाड़नेवाले विषय हैं, उनमें आसक्त नहीं हो, वे अपने अन्दरकी समाधिको जानते हैं ॥२७॥

(१३८) संयमी (भिक्षु) को कथक्कड नहीं होना चाहिए, न प्रश्न करनेवाला, न बात फैलानेवाला। श्रेष्ठ धर्मको जानकर कृतकरणीय होना चाहिए, ममतावाला नहीं ॥२८॥

(१३९) ब्राह्मण (मुनि) छिपी (माया), प्रशंसनीय (लोभ), उत्क्रोश (मान), और प्रकाश (क्रोध) नहीं करे। जो धुतांग को सुसेवित कर धर्ममें) प्रणत हैं, उनमें वह सुविवेक निहित हो गया ॥२९॥

(१४०) रागविरत, हितयुक्त, सुसंवर-युत, धर्मार्थी, तपःपरायण, शान्त-इन्द्रिय होकर विहरै। अपना हित कठिनाई से प्राप्त होता है।३०।

(१४१) जगत्के सर्वदर्शी ज्ञातृ-पुत्र मुनिने (जो) सामायिक कहा, निश्चय ही वह पहले नहीं सुना गया, न वैसा आचरण किया गया था ॥३१॥

(१४२) ऐसे इसे समझकर इस श्रेष्ठ धर्मको ले बहुतेरे हितयुक्त (जन), गुरुके आशयका अनुवर्तन करते विरक्त हो कथित महावाढको पार कर गये—यह मैं कहता हूँ ॥३२॥

---

३. उद्देशक

(संयमका जीवन)

(१४३) कर्म में संयत भिक्षुको जो अनजाने दुःख भोगना पडता है, वह संयम-साधनसे नष्ट हो जाता है, मरणमें (शरीर) के छोड़नेपर वह पण्डित (परमधामको) चला जाता है ॥१॥

(१४४) जो विज्ञापनाओं (नारियों) से अ-संसक्त हैं, वे (भव-सागरसे) तरे कहे गये, उस (नारिसंसर्ग) से ऊपर (मोक्ष को) देखो, मुनियों ने कामभोगों को रोग सा देखा ॥२॥

(१४५) व्यापारियों द्वारा लाये श्रेष्ठ (रत्नादि) को राजा लोग धारण करते हैं, वैसे ही रात्रि भोजनादिका त्याग परम महाव्रत कहा गया है, (जिन्हें कि संयमी धारण करते हैं) ॥३॥

(१४६) यहां जो सुखके पीछे चलनेवाले, आसक्त, कामभोगोंमें लीन, कृपणों (दरिद्रों) के समान, ढीठ निर्लज्ज हैं; वे उक्त समाधिको नहीं जान सकते ॥४॥

(१४७) जैसे गाड़ीवान् द्वारा पीटा और प्रेरित, वह कम सामर्थ्य, दुर्बल बैल अधिक नहीं खींच सकता, और थौस जाता है ॥५॥

(१४८) वैसे ही काम (संबंधी) भोगकी इच्छा जान, आज या कल (नारी) संसर्गको छोड दे, कामी हो काम (भोगों)की कामना न करे, मिलने पर भी न मिली जैसा माने ॥६॥

(१४९) पीछे बुरी (योनिमें) न जाना हो, इसलिये अलग कर अपने पर अनुशासन करे। असाधु (पुरुष) अधिक शोकमें पड़ता है, वहुत रोता-कांदता है ॥७॥

(१५०) यहीं जीवनको देखो, सौ वर्ष जीनेवाला (मानव) तरुण टूट जाता है। इस जीवनको भंगुर बूझो। लोभी नर कामभोगमें अपनेको खो देते हैं ॥८॥

(१५१) जो हिंसापरायण, तीन दण्डसे दण्डित, विल्कुल रूक्ष जन हैं, वह पापलोकमें जायंगे, चिरकाल तक आसुरी दिशा (नरक) में पड़ेंगे ॥९॥

(१५२) (टूटा) जीवन जोड़ा नहीं जा सकता, तो भी मूढ जन घमंड करता है,—वर्तमानसे मुझे काम है, कौन परलोकको देखकर लौटा है ॥१०॥

(१५३) हे अंधे मानव द्रष्टा(भगवान्)के कहे पर श्रद्धा कर। हे थोडा देखनेवाले, अपने किये मोहनीय कर्मसे देखनेकी शक्ति वन्द हो जाती है, इसे जान ॥११॥

(१५४)दु:खी(जन)पुन: पुन: मोह को प्राप्त होता है,(अत: अपनी) स्तुति-पूजा से विरक्त हो। इस प्रकार(धर्म)सहित, संयत(पुरुष)सारे प्राणियों को अपने जैसा जाने ॥१२॥

(१५५)नर चाहै घरमें वसे,पर,क्रमश: प्राणियोंके विपयमें सयत हो सवमें समता भाव, सुन्दर व्रतधारी हो तो वह देवोंकी सलोकताको प्राप्त होता है ॥१३॥

(१५६)भगवान(महावीर)के अनुशासन को सुनकर वहां सत्यमें पराक्रम करे, सबमें ईर्ष्या-रहित हो शुद्ध मधूकड़ी-गोचरी लाये ॥१४॥

(१५७)सब जानकर धर्मार्थी प्रधान(ध्यान) में तत्पर हो संवरका अधिष्ठान करे। सदा (मनसा वाचा, कर्मणा) गुप्त और योगयुक्त परम मोक्ष के लिये स्थित हो, अपने परायेके लिये प्रयत्न करे ॥१५॥

(१५८) धन, पशु और कुल-परिवार हैं, इनको मूढ शरण समझता है —"ये मेरे हैं, उनके भीतर मैं हूं" (पर वहां) कोई त्राण और शरण नहीं हैं ॥१६॥

(१५९) दुःख के आ पडनेपर, अथवा जीवनान्त (प्रसंग) के आ पहुंचनेपर, अकेले को ही आना-जाना होता है। अतः विद्वान्(उन्हें)शरण नहीं मानता ॥१७॥

(१६०) सारे प्राणी अपने कर्मसे निर्मित हैं, अप्रगट दुःखसे(दुःखित) हैं। जन्म-जरा-मरणसे उत्पीडित शठ (भवसागरमें) भटकते हैं ॥१८॥

(१६१) "यही क्षण हमारे पास है, बोधि (परमज्ञान) सुलभ नहीं है" यह कहा गया है। (ज्ञानादि) भावदृष्टि सहित ऐसा देखे, यही जिनने और शेष (जिनों) ने कहा है ॥१९॥

(१६२) भिक्षुओ! पहले भी जिन हुये, आगे भी होंगे। काश्यपके धर्मानुगामी सुव्रत इन गुणों को (मोक्ष का साधन) बतलाते हैं ॥२०॥

(१६३) (मन-वचन-काय) तीनों प्रकार से प्राणों को न मारे। आत्महितु, अकारण संवरयुक्त रहे। इस प्रकार आज अनन्त सिद्ध और भविष्यमें दूसरे होंगे ॥२१॥

(१६४) ऐसा उन प्रथमके (अनन्त) जिनने कहा। अनुपम, सर्वोत्तम ज्ञानी, सर्वात्मदर्शी, अनुपम ज्ञान-दर्शन-धारी अर्हत् ज्ञातृ-पुत्र वैशालिक भगवान् ज्ञातपुत्रने भी (वैसा) कहा। यह मैं कहता हूँ ॥२२॥

उपसर्ग-अध्ययन ३

१. उद्देशक

ऋतु आदि बाधा—

(१६५) जब तक दृढ हिम्मतवाले जूझते विजेताको नहीं देखता, तब तक (कायर) भी (उसी तरह) अपने को शूर समझता है, जैसे महारथी (कृष्ण) के पहले शिशुपाल ॥१॥

(१६६) संग्राम उपस्थित होनेपर शूर रणक्षेत्र में जाते हैं। (वहां) विजेता द्वारा छिन्न-भिन्न (अपने) बेटे को मां भी नहीं पहचान पाती ॥२॥

(१६७) इसी प्रकार भिक्षुचर्यामें न-चतुर नौसिखिया अनुभव-हीन (भिक्षु) रूखे (श्रमणजीवन) का न सेवन किये, अपने को सूरमा समझता है ॥३॥

(१६८) जब जाड़े के महीनोंमें सारे अंग में सरदी लगती है, तो मन्द (व्यक्ति) उसी तरह हिम्मत हारते हैं, जैसे बिना राजका क्षत्रिय राजा ॥४॥

(१६९) गरमीकी लू लगने से परेशान और अतिप्यासे होनेपर, वहां मन्द उसी तरह हिम्मत हारते हैं, जैसे थोड़े जलमें मछली ॥५॥

(१७०) दत्त (भिक्षा) की कामना दुःखरूप है, मांगना दुस्सह है, साधारण जन बातकी डींग मारते हैं (ये) अभागे "कर्मके मारे हैं" ॥६॥

(१७१) गांवों और नगरों में इन शब्दोंको, न सह सकते, वहां मंद वैसे ही हिम्मत हारते हैं, जैसे संग्राममें कायर ॥७॥

(१७२) यदि भूखे भिक्षुको (चण्ड) कुतिया काट खाती है, तो वहां मन्द वैसे ही हार मानते हैं, जैसे आग छू जानेपर प्राणी ॥८॥

(१७३) फिर कोई विरोधी निन्दते हैं–जो ये (भिक्षु) इस तरह की जीविका करते हैं, ये किये को भोग रहे हैं ॥९॥

(१७४) कोई-कोई वचन मारते हैं—ये नंगे, कौर मांगने वाले, अधम, मुंडिया, खाजसे नष्ट शरीर वाले, पसीनेके मारे अ-शान्त (जीव) हैं ॥१०॥

(१७५) इस प्रकार सन्देहमें पडे स्वयं अजान कोई-कोई मोहके मारे मन्द (भिक्षु) अन्धकारसे (और भी घने) अन्धकार में जाते हैं ॥११॥

२ – डंस-मच्छर आदि बाधा—

(१७६) डाँस-मच्छरोंके काटने, घासके विस्तर, जगनेको न सहन कर (सोचने लगते हैं) "मैंने परलोक नहीं देखा, (न यही) कि मरनेके बाद क्या होता है ॥१२॥

(१७७) केश नोंचनेसे पीड़ित, ब्रह्मचर्यमें पराजित, मन्द वैसे ही हिम्मत हार देते हैं, जैसे जाल में पडी मछलियाँ ॥१३॥

(१७८) अपनेको दण्ड देने वाले, उलटी चित्तवृत्तिवाले, राग-द्वेष-युक्त, कोई-कोई दुष्ट (जन) भिक्षुको कष्ट देते हैं ॥१४॥

(१७९) वल्कि विदेशोंमें कोई-कोई मूढ़, सुव्रत भिक्षुको "चोर चोर' कहकर वांधते हैं, कडवी वात से (दुखाते) हैं ॥१५॥

(१८०) डंडे-घूसे-थप्पड़से पीटे जानेपर मूढ भिक्षु उसी तरह अपने को याद करता है, जैसे रूसकर (सुसरालसे) भागने वाली स्त्री ॥१६॥

(१८१) ये हैं जी, सारे कठोर, दुस्सह कष्ट, जिनके वस में पड पौरुषहीन (भिक्षु) वैसे ही घर लौट जाता है, जैसे वाणों से विंधा हाथी, ऐसा मैं कहता हूं ॥१७॥

२. उद्देशक

स्वजन बाधा—

(१८२) फिर जो ये सूक्ष्म दुस्तर सम्बन्ध भिक्षुओंके (अपनोंसे) हैं, उनसे कोई-कोई (ब्रह्मचर्यका) निर्वाह न कर गिर जाते हैं ॥१॥

(१८३) भाई-बन्द (भिक्षुको) देख घेरकर रोते हैं—तात, हमने तुम्हें पोसा। तुम हमें पोसो। क्यों तात, हमें छोड़ते हो ॥२॥

(१८४) तात, ये स्थविर तुझे प्रिय हैं, और बहिन (तेरी) कुछ नहीं है। तात, भाई तेरे सगे हैं, क्यों हम सहोदरों को छोडते हो? ॥३॥

(१८५) माता-पिताको पोसो, इससे(पर)लोक यही हैं। लौकिक (सदाचार) तात, जो कि माताका पालन करना ॥४॥

(१८६) तात, तेरे उत्तम मधुरभाषी छोटे-छोटे पुत्र हैं, तात, तेरी भार्या नवतरुणी है, वह कहीं दूसरे आदमीके पास न चली जाये ॥५॥

(१८७) आओ तात, घर चलें, मत (काम) करना, हम काम कर देंगे। दूसरी वार हम यहां देख लेंगे, अभी अपने घर चलें ॥६॥

(१८८) तात, चलो, फिर आ जाना, इतने से अ-श्रमण नहीं हो जाओगे। कामभोग का व्यापार न करते कौन तुम्हें रोक सकेगा? ॥७॥

(१८९) तात, जो कुछ ऋण था, सो भी देकर बराबर कर दिया। व्यापारके लिये जो सोना चाहिये, वह भी हम तुम्हें देंगे ॥८॥

(१९०) इसप्रकार करुणाके साथ उपस्थित वह सिखाते हैं, स्वजनों में बंधा होनेसे वह (भिक्षु) घर को भागता है ॥९॥

(१९१) जैसे वनमें उत्पन्न वृक्ष मालुलता से बांधा जाता है, इसी प्रकार इस भिक्षुको (वह) असमाधिसे बांधते हैं ॥१०॥

(१९२) नये पकड़े हाथीकी तरह स्वजनों द्वारा फंसाये उनके पीछे-पीछे दूसरे (जन) नई ब्याई गायकी भांति चलते हैं ॥११॥

(१९३) मनुष्योंके ये संसर्ग पाताललोककी भाँति दुःखसे तरने लायक हैं। वहाँ स्वजनोंके समूहसे मूर्छित नपुंसक क्लेश पाते हैं ॥१२॥

(१९४) उस (परिवार संबंध) को समझ कर भिक्षु "सारे संसर्ग बड़े आस्रव (चित्तमल) हैं" यह श्रेष्ठ धर्म सुनकर असंयत जीवनकी कांक्षा न करे ॥१३॥

(१९५) काश्यप (भगवान् महावीर) ने इन्हें खड्ड बतलाया है, जहाँ से बुद्ध-आत्मज्ञ निकल जाते हैं, पर मूढ जहां गिर पडते हैं ॥१४॥

२—राजा आदि बाधा—

(१९६) राजा, राजमन्त्री, ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय, साधुजीवी भिक्षु को भोगके लिये बुलाते हैं ॥१५॥

(१९७) हाथी-घोडे-रथकी सवारियोंसे, उपवन यात्रासे, उत्तम भोगोंको भोगो, महर्षि हम तुम्हें पूजते हैं ॥१६॥

(१९८) वस्त्र-गन्ध-आभूषणको, स्त्रियों को और पलंगको—इन भोगों को भोगो, हम तुम्हें पूजते हैं ॥१७॥

(१९९) हे सुव्रत, भिक्षुरूपमें जो यम-नियम तुमने आचरण किये वह सब घरमें बसने वालेके लिये भी वैसे ही विद्यमान हैं ॥१८॥

(२००) चिरकालसे (संयम,करते अब तुम्हें कैसे दोष (हो सकता है) इस प्रकार कहते वैसे ही निमन्त्रित करते हैं, जैसे चारा फेंककर सूअर को ॥१९॥

(२०१) भिक्षुचर्याके लिये प्रेरित (उसे) निवाहनेमें असमर्थ, वे मंद वैसे ही हिम्मत हार देते हैं, जैसे ऊँची चढाई में दुर्बल ॥२०॥

(२०२) रूखे व्रतमें असमर्थ, तपश्चर्यासे डरे, मंद पुरुष वहां उसी तरह हिम्मत हार देते हैं, जैसे चढाई में बूढा बैल ॥२१॥

(२०३) स्त्रियोंमें लुब्ध, होश खोये, कामभोगों में फंसे इस प्रकार निमन्त्रणसे प्रेरित हो घर चले जाते हैं। ऐसा कहता हूं ॥२२॥

३. उद्देशक

(१) युद्ध बाधा—

(२०४) जैसे युद्धके समय कायर पीछे की ओर गहरे छिपे गड़हेको देखता है, कि कौन जाने (कहीं पराजय न हो ॥१॥

(२०५) कायर सोचता है—क्षणका भी क्षण जैसा वह क्षण(होता है), जब कि पराजय होती है। (पराजय होनेपर) भाग कर जहां छिपेंगे ॥२॥

(२०६) ऐसे ही कोई-कोई श्रमण अपनेको निर्बल जान, भविष्यके भयको देख, इस (बाहरी विद्याओं) को (जीविकार्थ) सीख लेते हैं ॥३॥

(२०७) कौन जाने स्त्रीसे या कच्चे जलके (व्यवहारसे) में व्रतभ्रष्ट हो जाऊं। हमारे पास धन भी नहीं, अतः पूछने पर (जोतिस आदि) हम भाखेंगे ॥४॥

(२०८) ऐसे ही संदेह में पडे, मार्गसे अजान छिपे गड्ढोंको ढूँढने वाले (भिक्षु) सोचते हैं ॥५॥

(२०९) संग्रामकालमें सुरपुरके जानेवाले ज्ञातृ लोग, पीठकी ओर नहीं देखते, (सोचते हैं) मरनेसे (अधिक) क्या होगा ? ॥६॥

(२१०) इसप्रकार घरके बंधनको छोड, आरम्भ-हिंसादि को दूर फेंक, पराक्रम करता भिक्षु कैवल्यके लिए प्रव्रजित हो ॥७॥

(२) अन्य धर्मियोंकी बाधा—

(२११) ऐसे साधुजीवनवाले भिक्षुको कोई निन्दते हैं, तीर्थको जो निन्दते हैं। वे समाधिसे बहुत दूर ॥८॥

अन्य की बाधा—

(२१२) एक दूसरेमें आसक्त (गृहस्थोंकी तरह) बंधे (ये बौद्ध आदि मतके भिक्षु) रोगीके लिये पिण्डपात (भोजन) लाकर देते हैं ॥९॥

(२१३) आप (जैन साधु) रागयुक्त एक दूसरे के वशमें हैं, सच्चे पथसे भटके तथा भवसागर को पार किये हैं ॥१०॥

(२१४) मोक्षविशारद भिक्षु उन (अन्य धर्मियों) से बोले—"इस प्रकार बोलते (आप) बुरे पक्ष का ही सेवन करते हैं ॥११॥

(२१५) आप लोग धातु-पात्र में भोजन करते हैं, रोगीके लिये जो मंगाते हैं, उसके लिए बनाये (भोजन) को बीज और कच्चे जल को खाते हैं ॥१२॥

(२१६) आप लोग तीव्र (कर्म) अभितापसे लिप्त, सत्पथ छोड़े, समाधिहीन हैं। घावको बहुत खुजलाना ठीक नहीं, (क्योंकि उससे) दोष होता है ॥१३॥

(२१७) (मिथ्या प्रतिज्ञासे) युक्त जानकार (जैन-श्रमण) उनको तत्वका अनुशासन करते हैं—आपका यह मार्ग ठीक नहीं है, (आप) विना सोचे व्रत और कर्म करते हैं ॥१४॥

(२१८) गृहस्थका लाया भोजन खाना ठीक है, भिक्षुका लाया नहीं, यह कहना बांसकी फुनगी की तरह क्षीण है ॥१५॥

(२१९) जो वह (दानादि) धर्मकी देशना है, वह सदोषोंको शोधने वाली है, इन दृष्टियोंसे पहले (यह) नहीं उपदेशी गई थी ॥१६॥

(२२०) सभी युक्तियोंसे नर पार पा फिर वादका निराकरण कर वह और भी ढीठ बनते हैं ॥१७॥

(२२१ राग-द्वेषसे पराजित स्वरूप, झूठेपनसे भरे वे (अन्य-तीर्थिक) तव (हिमालय पर्वतके) तगणोंकी भांति गाली पर उतर आते हैं ॥१८॥

(२२२) अपने स्वयं समाहित हो (भिक्षु) बहुगुण-उत्पादक (कामों) को करे। वैसा आचरण करे जिससे कि दूसरे विरोधी न हों ॥१९॥

(२२३) काश्यप (भगवान्) के बतलाये इस धर्मदायज को ग्रहण कर, भिक्षु (स्वयं)निरोग और शान्तचित्त हो रोगीकी(सेवा) करे ॥२०॥

(२२४) दर्शनवाले प्रशान्त (भिक्षु) प्रत्यक्ष श्रेष्ठ धर्मको जानकर बाधाओं पर काबू पा मोक्ष तकके लिये प्रव्रज्या ले ॥२१॥

४. उद्देशक

अन्यतीर्थिक बाधा (पुनः)—

(२२५) महापुरुषोंने पहले ही कहा है—"तप्त तपोधन (गंगा आदि के) जल से सिद्धि प्राप्त हुये' यह सोच मंद फँस जाता है ॥१॥

(२२६) भोजन त्यागकर विदेहके निमि राजाने और भोजन कर के रामगुप्त ने, बाहुका नदीके(कच्चे)जलको पीकर वैसे ही नारायण ऋषिने सिद्धि प्राप्त की ॥२॥

(२२७) असित,देवल, द्वैपायन महाऋषि और पराशर जल हरे बीजोंको खाकर मुक्त हुये ॥३॥

(२२८) ये पूर्वकथित महापुरुष (हमारे) यहां भी माने जाते हैं, बीज और जलको खाकर सिद्ध हुए, यह मैंने भी सुना है ॥४॥

(२२९) भारके कारण टूट गये गदहोंकी भांति इन (बातों मेंमंद फंस जाते हैं और (आग लगने आदिके) भयके समय पिछलगू की भांति पीछे हो लेते हैं ॥५॥

(२३०) कोई कहते हैं—"सुख सुखसे मिलता है" पर, यहां (तीर्थंकरका) आर्यमार्ग श्रेष्ठ और समाधियुक्त है ॥६॥

(२३१) ऐसे उपेक्षा न करो, थोडेके लिये बहुतको न हराओ, (उस सुखवाले मत) अ-मोक्ष को समझो, (नहीं तो सोना छोड) लोहा ले जाने वाले (वनिये) की भांति पछताओगे ॥७॥

(२३२) (वे तो) प्राणिहिंसामें रत, झूंठ बोलनेमें असंयमी बिना दियेको लेने, मैथुन और परिग्रह में तत्पर (हैं) ॥८॥

(२३३) कोई स्त्रीवश प्राप्त, जिस शासनसे विमुख संसारी, अनाडी ज्ञान और चरित्रसे भ्रष्ट कहते हैं ॥९॥

(२३४) "जैसे फोडे-फुन्सी को क्षणभर दवा देते हैं, वैसेही याचना करती स्त्री को भी करे। यहां दोष कैसा ॥१०॥

(२३५) जैसे भेड थिर जल को पी लेती है, वैसे ही प्रार्थिनी स्त्री को (करे), यहाँ दोष कैसा ॥११॥

(२३६) जैसे पिंग नामक पक्षी स्थिर जल को पी लेते हैं, वैसे ही प्रार्थिनी स्त्री को, यहां दोष कैसा ॥१२॥

(२३७) मिथ्यादृष्टि वासनामें डूबे अनार्य (लोग) बच्चों की (हत्यारिनी) पूतना की तरह ऐसे (संभोगकी वातें करते हैं) ॥१३॥

(२३८) भविष्यका ख्याल न कर, वर्तमानके पीछे पडे वे तरुण आयुके नष्ट होनेपर पीछे परिताप करेंगे ॥१४॥

(२३९) जिन्होंने समयपर पराक्रम किया और पीछे परिताप नहीं किया, वे धीर बंधन से मुक्त हैं, वह जीवनकी काँक्षा नहीं रखते ॥१५॥

(२४०) जैसे वेतरणी नदी को दुस्तर मानते हैं, वैसे ही लोकमें नारियाँ विवेकहीनके लिये दुस्तर हैं ॥१६॥

(२४१) जिन्होंने नारियोंके संयोग और पूजना(शृङ्गार)को सब का निराकरण करके पीछे छोड़ दिया, वे समाधियुक्त हैं ॥१७॥

(२४२) ये वाढको उसी तरह पार करेंगे, जैसे समुद्रको व्यापारी। जिस वाढमें प्राणी दुःख पाते अपने कर्मों द्वारा कटते हैं ॥१८॥

(२४३) इसे समझकर भिक्षु सुव्रत और समिति युक्त हो कर विचरे, झूंठ बोलना छोडे, चोरी को त्यागे ॥१९॥

(२४४) ऊपर-नीचे और तिरछे जो कोई जगम-स्थावर प्राणी हैं, सबमें हिंसाविरत रहें। इसे शान्ति-निर्वाण कहा गया ॥२०॥

(२४५) काश्यप (भगवान्) द्वारा बतलाये इस धर्मको ग्रहण कर, निरोग शान्त भिक्षु रोगी की(परिचर्या) करे ॥२१॥

(२४६) शान्त पुरुष प्रत्यक्ष पेशल इस धर्मको समझकर, बाधाओं पर नियन्त्रण कर मोक्षकाल तक के लिये प्रव्रज्या ले। ऐसा मैं कहता हूं ॥२२॥

—०—

स्त्रीपरिज्ञा अध्ययन ४

१ उद्देशक

स्त्रीबाधा—

(२४७) माता-पिताको अपने पहले संयोगको, छोड़कर चाहते हैं... "मैं मैथुनविरत हो (ज्ञान दर्शन और चरित्र) सहित एकान्तमें विचरूंगा" ॥१॥

(२४८) मन्द स्त्रियां सूक्ष्म-अप्रगट शब्दोंसे (भिक्षु) के पास आती हैं। वह उन उपायोंको भी जानती हैं, जिनसे कोई भिक्षु (उनसे) मिलन करते हैं ॥२॥

(२४९) वार-वार पास में वैठती हैं, वार-वार सुन्दर कपड़ा पहनती हैं; नीचेके शरीरको भी, वांह उठा कांख को दिखलाती; पास आती हैं ॥३॥

(२५०) शयन-आसनके उपयोगके लिये कभी स्त्रियां बुलाती हैं। इन्हें ही भिक्षु नाना रूपके फंदे जाने ॥४॥

(२५१) न उन पर आँख लगाये, न साहस(मैथुन)स्वीकार करे, न उनके साथ विहरे, इस तरह आत्मा सुरक्षित रहता है ॥५॥

(२५२) बुलाकर विश्वास पैदा कर अपने साथ वासका निमन्त्रण देती हैं, इन्हें ही नाना रूपके फदे जाने ॥६।

(२५३) अनेक मन वांधनेवाले, करुण विनीत भाव से पास आकर, मीठी वात वोलती हैं, फिर दूसरी वातकी आज्ञा देती हैं ॥७॥

(२५४) जैसे अकेले रहनेवाले निर्भय सिंहको मांस दे वांधते हैं, वैसे ही स्त्रियां भी संयमी अनागारिकको वांध लेती हैं ॥८॥

(२५५) फिर वैसे ही उसे झुकाती हैं, जैसे बढ़ई क्रमशः चक्केकी पुट्ठी को। तब बँधे मृगकी भाँति हिलता-डुलता भी(पुरुष) नहीं छूटता ॥९॥

(२५६) तब विषमिश्रित पायसको खानेकी भाँति वह पीछे सन्ताप करता है। इस प्रकार विवेक पकडे मुक्तिके अधिकारी(भिक्षु,के लिये (स्त्री-) संवास ठीक नहीं ॥१०॥

(२५७) विष बुझे कांटेसी जान स्त्रीको वर्जित करे। स्त्रीके बसमें पड़ा कुलोंमें जा उपदेश दे, सो जो निर्ग्रन्थ(साधु)नहीं ॥११॥

(२५८) जो ऐसी मधूकरीलिप्त हैं, वह दुश्शील हैं, अतः तपस्वी (भिक्षु)स्त्रियोंके साथ न विहरे ॥१२॥

(२५९) भिक्षु बेटी, बहू, दाई अथवा दासियोंके साथ, बडियों या कुमारियोंके साथ भी घनिष्ठ परिचय न करे ॥१३॥

(२६०) एक कालमें(दो को)देख,(वह भिक्षु(स्वजनोंका)सुहृदयोंका अप्रिय होता है। वह कहते हैं—ये जीव कामासक्त हैं। "फिर तुम इसके पुरुष हो, इसे रक्खो-पोसो" ॥१४॥

(२६१) उदासीन श्रमणको भी देखकर कोई कोप करते हैं, अथवा भोजन रख छोड़नेके लिये स्त्रीके प्रति दोषाशंकी होते हैं ॥१५॥

(२६२) समाधियोगसे भ्रष्ट स्त्रियोंके साथ घनिष्ठता करते हैं, इसलिये आत्महित के ख्याल से श्रमण उनके साथ सहवास नहीं करते ॥१६॥

(२६३) बहुतेरे घर छोड़(बने भिक्षु)मिश्रित बन जाते हैं। वह इसे ध्रुव मार्ग बतलाते कहते हैं—कुशीलोंके वचन में ही बल होता है ॥१७॥

(२६४) जो सभामें शुद्ध बोलता है, पर रहस्यमें पाप करता है। (लोग वह)जैसा है वैसा जानते हैं—"यह मायावी शठ है" ॥१८॥

(२६५) स्वयं दुष्कृत्यको नहीं कहता, आदेश देने पर डींग हांकता है, "मैथुनकी कामना न करो" कहने पर वहुत खिन्न होता है ।।१६।।

(२६६) वह भी जो स्त्रियोंको पोस चुके हैं, स्त्रियोंके द्वारा होनेवाले खेद को जानते हैं, प्रज्ञायुक्त भी कोई-कोई नारीके वशमें पड़ जाते हैं ।।२०।।

(२६७) चाहे व्यभिचारीका हाथ पैर, अथवा चाम-मांस काटा जाता, आगसे जलाया जाता, काटकर नमक छिड़का जाता ।।२१।।

(२६८) कान-नाक काटा जाता, कंठछेदन सहना पड़ता । इतने पर भी इसतरह सन्तप्त होने पर भी नहीं कहते "फिर नहीं करूंगा" ।।२२।।

(२६९) यह सुना भी है, (इसके लिये, स्त्रीवेद(कामशास्त्र)में भी प्रसिद्ध है, तो भी वह कह कर अथवा कार्यसे अपकार करती हैं ।।२३।।

(२७०) मनसे दूसरा सोचती हैं, वाणीसे दूसरे को, और कर्मसे दूसरे को, अतः भिक्षुओ, स्त्रियोंको वहुमायाविनी जान विश्वास न करो ।।२४।।

(२७१) विचित्र वस्त्र-भूपा पहनकर श्रमणसे बोलती है,—हे भय-रक्षक, मैं विरक्त हो विचरती हूं, मुझे तपस्या-धर्म वतलाओ ।।२५।।

(२७२) या श्राविका होनेकी प्रसिद्धिसे कहती—"मैं श्रमणोंकी एक धर्मवाली हूं," 'विद्वान् उनके संवाससे आगके पास रक्खे लाखके घड़े की भांति विषादको प्राप्त होता है ।।२६।।

(२७३) लाखका घड़ा आगसे लिपट जलकर जलती आगमें ही नाश हो जाता है, ऐसे अनगार स्त्रियोंके संवास से नाशको प्राप्त होते हैं ।।२७।।

(,७४) पाप कर्म करते हैं, पूछनेपर कहते हैं—"मैं पाप नहीं करता यह तो मेरी अंकशायिनी है" ।।२८।।

(२७५) मूढकी यह दूसरी मन्दता है, जो कि कियेका इन्कार करता है, सम्मानका इच्छुक असंयमाकांक्षी दूना पाप करता है ।।२९।।

(२७६) दर्शनीय आत्मज्ञानी अनगारको(वह)कहती हैं—तायिन् ! "वस्त्र-पात्र या अन्न-पानको स्वीकार करो" ॥३०॥

(२७७) भिक्षु इसे चारा ही समझे,(उनके)घर जानेकी इच्छा न करै। मोहपाशमें बँधा मंद फिर मोहमें फँसता है। ऐसा कहता हूँ ॥३१॥

२. उद्देशक

स्त्रीससर्गका दुष्परिणाम—

(२७८) कामभोगमें कभी राग न करै, भोगकामी हो तो विरक्त हो जाये। कोई-कोई भिक्षु जैसे भोग भोगते, सो श्रमणोंके भोगको सुनो ॥१॥

(२७९) तपोभ्रष्ट, होश खोये, कामासक्त भिक्षुको वसमें करनेके बाद स्त्रियां पैर उठा सिर पर मारती हैं ॥२॥

(२८०) केश रखनेवाली मुझ स्त्रीके साथ, भिक्षु, तू विहरना नहीं चाहता, तो मैं केशलुंचन करा लूंगी,(पर)मुझसे अलग न विचर ॥३॥

(२८१) जब वह पकड़में आ जाता है, तो वैसे(भिक्षु)को नौकर का काम देती हैं—"देख कद्दू काट, जा अच्छे फल ला" ॥४॥

(२८२) भाजी पकानेकेलिए लकड़ी ला या रातको रोशनी होगी, मेरे पात्र रंगा, आ तब तक मेरी पीठ मल दे ॥५॥

(२८३) मेरे कपड़ोंको ठीक कर, अन्न-पान ले आ। सुगन्ध और कूंची ला, बाल काटनेकेलिए श्रमण ? हजामको अनुमति दे ॥६॥

(२८४) मुझे अँजनदानी, आभूषण और(वीणाका)खुनखुना दे, और लोध, लोधका फूल, बांसुरी और गोली भी (ला) ॥७॥

(२८५) कूट, तगर, अगर, खसके साथ खूब पिसा(सुगन्ध ला), मुख पर मलनेकेलिए तेल, कपड़े आदिके रखनेकेलिये बांसकी पिटारी भी ॥८॥

(२८६) अधरकेलिये नन्दीचूर्ण, छतरी-जूती भी ला । भाजी काटनेकेलिये छुरी और वस्त्र रंगनेकेलिये नीला ॥९॥

(२८७) साग पकानेकेलिये कडाही, आँवला, कलसा, तिलक, लगाने की सलाई, आंजनकी सलाई- गर्मीकेलिये पंखी भी ला ॥१०॥

(२८८) कांखमोचनी, कंघी और केश कंकण ला, दर्पण दे और दतवन भी ला ॥११॥

(२८९) सुपाडी, पान, सूई-धागा लाना न भूलना, मूत्रकेलिये मूतनी, सूप, ओखलीं, सज्जी गलानेका वर्तन भी ॥१२॥

(२९०) आयुष्मान्, पूजादानी, लोटा ला, संडास भी खोद दे। वच्चेकेलिये तीर धनुही और श्रमणके वेटेकेलिये वैलका रथ भी चाहिये ॥१३॥

(२९१) परिया- नगाडी, कपड़ेका गेंद, वच्चेको खेलनेकेलिये। वर्षा सिरपर आ गई, निवास और भोजनकी भी व्यवस्था कर ॥१४॥

(२९२) नई सुतलीका मंचिया, चलनेकेलिये पादुका भी, पुत्र दोहलकेलिये (अमुक वस्तु) ला । दासीकी भांति हुकम देती है ॥१५॥

(२९३) पुत्र फल पैदा हो जानेपर "ले इसे या छोड दे।" पुत्र पोसनेकेलिये कोई-कोई ऊँट की तरह भार ढ़ोनेवाले बन जाते हैं ॥१६॥

(२९४) रातको भी उठनेपर वच्चेको धाईकी भांति (गोद में) डाल देती हैं। लाजवाले होते भी वे धोबीकी भांति कपडा धोनेवाले वनते हैं ॥१७॥

(२९५) वहुतोंने ऐसा पहले किया है। विषयके लिये जो भ्रष्ट हुए वह क्रीतदास या नौकर की भांति पशु जैसे हो गये, अथवा कुछ भी नहीं रहे ॥१८॥

(२९६) स्त्रियोंके विपयमें यह कहा, उनके साथ संवास और प्रसंग न करे, कामभोग उसी किसमके हैं, इसीलिये दोपकारक कहे गये ॥१९॥

(२६७) यह खतरा अच्छा नहीं, ऐसा सोच अपनेको रोके। न स्त्री से, न पशुओंसे, न अपने हाथसे भिक्षु काम-चेष्टा करे ॥२०॥

(२६८) शुद्धचित्त, मेधावी, ज्ञानी, सर्वदुःख-सह भिक्षु मन-वचन-कर्मसे, परमार्थकी भावनासे भी काम-क्रिया न करे ॥२१॥

(२६६) रजोमुक्त, मोहमुक्त उन वीर ने ऐसा कहा, इसलिये अन्त-विशुद्ध, सुमुक्त पुरुष मोक्ष तककेलिये प्रव्रज्या ले। ऐसा मैं कहता हूँ ॥२२॥

नरक-विवरण–अध्ययन ५

१. उद्देशक

१—नरक भूमि—

(३००) (जंबू स्वामी) मैंने मुक्तिप्राप्त महर्षि से पूछा—'आगे जलनेवाले नरक कैसे होते हैं ? हे मुनि, मुझ अजानको जाननहारे आप बतलायें, कैसे मूढ नरकको प्राप्त होते हैं ?" ॥१॥

(३०१) मेरे ऐसा पूछने पर सुधर्मा बोले—तीव्रप्रज्ञावाले महानुभाव काश्यपगोत्रीय (महावीर) ने यह कहा—समझनेमें कठिन, पापी, अत्यन्त दीन जनों का दुःखदायी (वासस्थान) मैं आगे बतलाऊंगा ॥२॥

(३०२) जो कोई जीवनकी इच्छा रखनेवाले क्रूर यहाँ (संसार-में) पापकर्म करते हैं, वे महाघोर अन्धकार-मय, तीव्र ताप वाले नरक में गिरते हैं ॥३॥

(३०३) जो अपने सुखकेलिये स्थावर और जंगम प्राणियोंकी दारुण हिंसा करते हैं; जो रूखे, विना दियेको लेने वाले (चोर) होते हैं, जो सेवन-योग्य (किसी आचरण) का अभ्यास नहीं करते ॥४॥

(३०४) जो ढीठ बहुतेरे प्राणों को मारता है, अशान्त मूर्ख घात

करता है। वह अन्धकार रूपी रातको प्राप्त होता है, और नीचे सिर हो दुर्गम नरकमें जाता है ॥५॥

(३०५) परम अधर्मी (यमदूतों) के "मारो, छेदो, काटो, जलाओ इसे" वचनोंको सुनकर, वे नरकवासी (जन) भय के मारे वेहोश हो, चाहते हैं—"किस दिशामें भाग जायें ॥६॥

(३०६) जलती अंगारराशि (आगवाली) जैसी भूमिपर चलते, वे वहाँ चिरकाल तक रहने वाले चिल्ला-चिल्लाकर बड़ी दीनता से रोते हैं ॥७॥

(३०७) शायद तूने सुनी हो भयंकर वेतरणी तेज छुरे सी तीक्ष्ण धारवाली है। वाणसे खोभे जाते, शक्तिसे मारे जाते भयंकर वेतरणी-को पार होते हैं ॥८॥

(३०८) क्रूर (यमदूत) होश खोये नाव पर आते (नारकीय जीवों) को कील चुभोते, दूसरे लंबे शूलों, त्रिशूलों से वेधकर नीचे गिरा देते हैं ॥९॥

(३०९) किन्हींके गलेमें पत्थर बाँधकर अथाह जलमें डुवोते, तपी भुर्भुर वालुकामें लोट-पोट कराते हैं। दूसरे यमदूत वहां उन्हें पकाते हैं ॥१०॥

(३१०) असूर्य नामक (एक नरक स्थान), बड़ा ही तपनेवाला, घोर अंधेरा, पार होनेमें अत्यन्त दुष्कर; (वहाँ) ऊपर, नीचे, तिरछे (सभी) दिशाओंमें एक सी आग जलती है ॥११॥

(३११) वहां गुहामें आगमें ज्ञान और प्रज्ञा खोये (पुरुष) अत्यन्त लिप्त हो जलता है। वह तपता करुण स्थान, वलात् प्राप्त कराया सदा अति दुःखमय है ॥१२॥

(३१२) क्रूरकर्मा (यमदूत) जहाँ (नरकमें) मूढको चार अग्नियोंमें मार कर वहाँ आगमें पड़ी जीती मछलियों की भाँति जलाये जाते, पड़े रहते हैं ॥१३॥

(३१३) बहुत दहकता सन्तक्षण नामक नरक (स्थान) है, जहाँ क्रूरकर्मा (यमदूत) हाथमें फरसे लिये हाथों, पैरों को बाँधकर नारकीयोंको पटरेकी भाँति काटते हैं ॥१४॥

(३१४) (यमदूत) फिर लोहू और पाखाने से लथ-पथ शरीरवाले सिर फूटे नारकीयों को उलट-पुलट कर लोहेकी कढाईमें छटपटाते जीवित मछलियों की भाँति पकाते हैं ॥१५॥

(३१५) वे वहाँ जलकर भस्म नहीं होते, न तीक्ष्ण पीड़ासे मर जाते। (अपने) यहाँ किये पापों के कारण उस भोगको भोगते दुःखी हो दुःख सहते हैं ॥१६॥

(३१६) वहाँ छटपटाते (नारकीयों) से भरे (नरकमें) घनी धधकती आगमें जाते हैं। वहाँ सुख नहीं पाते, तापसे युक्त होते भी जलाये जाते हैं ॥१७॥

(३१७) फिर नगर के हत्याकाण्ड की भाँति शोर सुनाई देता है। वहाँ वचन दुःखसे भरे होते हैं। भयकारी यमदूत (इन) भयंकर कर्म-वालों को जबर्दस्ती फिर-फिर जलाते हैं ॥१८॥

(३१८) दुष्ट (यमदूत) प्राण (-भूत-अंगों) से अलग कर देते हैं। मैं तुम्हें ठीक-ठीक बतलाता हूं। बाल (अज्ञान (क्रूर) डंडोंसे मार-मार पहले किये सारे कर्मोंकी याद कराते हैं ॥१९॥

(३१९) वे मारे जाते पाखानेसे भरे खौलते नरकमें पड़े रहते हैं। वे वहां विष्टामें सने रहते, कर्मसे लाये कीड़ोंसे काटे जाते हैं ॥२०॥

(३२०) सदा सर्वथा नारकोंसे भरा बलात् प्राप्य वह न्यायका स्थान अति दुःखदायक है। (नरकपाल) बेड़ी डाल देहको बेधकर उसके सीसको जलाते हैं ॥२१॥

(३२१) छुरेसे मूढ़की नाक काटते हैं, ओठोंको भी दोनों कानोंको भी काटते हैं, जीभको बित्ताभर बाहर निकाल, तीखे शूलोंसे जलाते हैं ॥२२॥

(३२२) वे मूढ तालके पत्ते की नाईं लोहू टपकाते रातदिन वहां चिल्लाते हैं, नमक लिपटे अंग वाले जलते वे लोहू, पीव और मांस गिराते रहते हैं ॥२३॥

(३२३) शायद तुमने सुना हो, लोहू पीव वाली जो तेज गुणवाली परम नवीन आग से युक्त हैं, जहां लवालव लोहू पीवसे भरी पोरिसा भरका कुंभीपाक नामक नरक (भाजन) है ॥२४॥

(३२४) उसमें डालकर मूढ को पकाते हैं, वे आर्तस्वर करुण रोना रोते हैं, प्याससे पीडित तपे रांगे तांवे पिलाये जाते और भी आर्तस्वरसे चिल्लाते हैं ॥२५॥

(३२५) पहले (जन्मोंमें) सौ-हजार बार अपने ही को वंचित कर वहां (नरकमें) क्रूर-कर्मा पड़े रहते हैं, जैसा कर्म किया, वैसा उसका भार (पीडा-परिणाम) हैं ॥२६॥

(३२६) अनाडी पापकर्म कर इष्ट और कमनीय (धर्मों) से विहीन, वे (जन) कर्मके वश दुर्गन्धयुक्त कठोर स्पर्शवाले कुणिम (नामक नरक वास-में पड़ते हैं। ऐसा मैं कहता हूं।

२. उद्देशक

(३२७) अव दूसरे भी निरन्तर दुःखरूप (नरक) को तुम्हें ठीक तौर से वतलाता हूं, (वहां) जैसे पाप करनेवाले मूढ पहले किये पापोंको भोगते हैं ॥१॥

(३२८) यमदूत हाथ और पैर वांधकर छुरे और तलवारसे पेट फाड़ते हैं, मूर्खके घायल शरीरको पकड़कर स्थिरता-पूर्वक पीठके चामको उघेडते हैं ॥२॥

(३२९) वे मूलसे ही हाथको काटते हैं और मुंह फाड़कर (वड़े वड़े गोलोंसे) जलाते हैं, एकान्तमें मूर्खको किये कामको याद कराते तथा कोपकर पीठपर कोड़े मारते हैं ॥३॥

(३३०) जलते आग सहित ऐसी भूमि पर चलते वे वाणसे चुभाये जाते तपसे जुओंमें जुते करुण रुदन करते हैं ॥४॥

(३३१) लोहपथकी तपी फिसलनेवाली भूमि पर मूढ जवर्दस्ती चलाये जाते हैं। उस भीषण भूमिपर चलाये जाते डंडोंसे दासोंकी भांति आगे किये जाते हैं ॥५॥

(३३२) वे जोरके साथ चलाये जाते गिरनेवाली शिलाओंसे मारे **सन्तापनी** नामक (नरकमें) जाते हैं, यह चिरस्थितिक (नरक) हैं, जहां अधर्मकारी जलाये जाते हैं ॥६॥

(३३३) कन्दुक (गेंद नामक नरक) में डालकर मूढ़को पकाते हैं जलकर फिर ऊपर उडते हैं। वे ऊर्ध्वकाय (डोम-कौओं) द्वारा खाये जाते दूसरे नखपाद (सिंह-व्याघ्रों) द्वारा भखे जाते हैं ॥७॥

(३३४) ऊंचा निर्धूम स्थान नामक (नरक) हैं, जिसमें जा करुण स्वरसे चिल्लाते हैं, ओंधे सिर करके काटकर, लोहे की भांति हथियारों से टुकड़े-टुकड़े करते हैं ॥८॥

(३३५) चमड़ा उकेले वहां लटकते लोहे की चोंचवाले पक्षियों द्वारा खाये जाते हैं, यह **संजीवनी** नामक चिरस्थायी नरक हैं, जहां पापी मन वाले लोग मारे जाते हैं ॥९॥

(३३६) हाथमें पडे सावक (शिकार) की भांति तेज शूलोंसे मार गिराते हैं, वे दुःखसे पीडित केवल दुःख पा शूल से विद्ध करुण स्वर में चिल्लाते हैं ॥१०॥

(३३७) **सदाजलता** नामक प्राणियोंका महावासस्थान है, जहां विना काठकी आग जलती है। जहां वहुत क्रूर कर्मकरने वाले लोग वांधे हुये चीखते, चिरकालतक वास करते हैं ॥११॥

(३३८) भारी चिता वना (उसमें) करुण-स्वरसे रोते उसे डाल देते हैं। वहां पापी वैसे (ही) गल जाता है, जैसे आगमें पड़ा घी ॥१२॥

(३३९) सदा भरा, जबर्दस्ती प्राप्त कराया वह न्यायका स्थान अतिदु:खद है। वहां हाथ पैर से बांधकर दुश्मनकी तरह डंडोंसे पीटते हैं ॥१३॥

(३४०) दु:ख देते मूढको पीठको तोडते हैं, लोहेके घनोंसे सीसको भी फोड़ देते हैं। छिन्न-भिन्न देह वे जलते आरोंसे कटे पटरेकी नाईं दूसरी यातनामें नियुक्त किये जाते हैं ॥१४॥

(३४१) क्रूर पापियों को याद करवा, वाणसे खोभते हाथी लायक भारमें जोत देते हैं। एक दो तीनको भी (सूली पर) चढा गुस्से हो उसके मर्मको बींधते हैं ॥१५॥

(३४२) मूढ फ़िसलनवाली कण्टकपूर्ण बड़ी भूमि पर जबर्दस्ती चलाये जाते हैं। बंधे शरीर दु:खित-चित्त कर्मोंसे प्रेरित पापियोंको खण्ड-खण्ड कर बलि देते हैं ॥१६॥

(३४३) बड़े जलते आकाशमें बेतालिक नामक एक शिला-पर्वत है, वहाँ बहुत क्रूर कर्मोंवाले वे हजार से भी अधिक मुहूर्तों तक मारे जाते हैं ॥१७॥

(३४४) तपाये जाते पापी रात-दिन चिल्लाते रहते हैं। एकान्तकूट नामक महानरकमें कूटसे बुरी तरह पिटते होते हैं ॥१८॥

(३४५) पहलेके दुश्मनकी तरह रोष करते (यमदूत) पकड़कर मोगरे सहित मूसलसे कूटते हैं। वे छिन्न-भिन्न शरीर लोहू की कै करते अघोमुख धरती पर गिरते हैं ॥१९॥

(३४६) वहां बहुत ढीठ और सदा कोप करने वाले अनाशित (भूखे) नामक गीदड़ पास में जंजीर से बंधे वहां बहुत क्रूरकर्मा (पापियों) को खाते हैं ॥ २० ॥

(३४७) छिपे लोहे सी तप्त फिसलू सदाजला नाम नदी है, जिस भयंकर को अकेले अरक्षित जाते पार होते हैं ॥ २१ ॥

(३४८) चिरकाल तक वहां रहते मूढको ये भयंकर स्पर्श रूपी

दण्ड निरन्तर मिलते हैं। मारे जाते उसका कोई रक्षक नहीं होता, (वह) अकेला स्वयं दुःख भोगता है ॥ २२ ॥

(३४९) जिसने जैसा कर्म पहले किया, वही परलोक में (सामने) आता है, सिर्फ दुःखमय संसार को अर्जित कर उस अनन्त दुःख वाले नरक को सहते हैं ॥ २३ ॥

(३५०) इन नरकों के बारे में सुनकर, धीर पुरुष सारे लोक में किसी को न मारे, एकान्त श्रद्धा-युक्त और परिग्रह-रहित हो तत्वों को समझे, और लोक के वश में न जाये ॥ २४ ॥

(३५१) इस प्रकार पशुओं, मनुजों और असुरों में चारों गतिओं में उनके अनन्त विपाक को, "वह सारा यही है," यह जान कर बराबर सदाचार पालन करते मृत्यु की प्रतीक्षा करे। मैं यह कहता हूं ॥ २५ ॥

। पंचम अध्ययन समाप्त ।

वीरस्तुति—अध्ययन ६

वीर-महिमा

(३५२) श्रमणो, और ब्राह्मणों, अनागारिकों तथा दूसरे मतावलम्बी परिव्राजकों ने (जंबू से, जंबू ने सुधर्मा से) पूछा—"वह कौन है अनुपम केवल हितकर धर्म (जिस भगवान् ने) अच्छी तरह देखकर बतलाया ? ॥ १ ॥

(३५३) ज्ञातृपुत्र* महावीर का कैसा ज्ञान था, और कैसा दर्शन था, और शील-सदाचार कैसा था। हे भिक्षु ! उसे ठीक जानते हो तो सुने-समझे अनुसार कहो ॥ २ ॥

---

* वैशाली (बसाढ, जिला मुजफ्फरपुर) के जैथरिया भूमिहार 'ज्ञातृ' ही हैं। वही जो लिच्छवि अपराजित गणतन्त्री लिच्छवियों की शाखा थे। आज भी उस प्रान्त के लाखों जैथरिया काश्यपगोत्री हैं।

(३५४) वह दुःखों के ज्ञाता, पटु, आशुबुद्धि, अनन्त ज्ञानवाले अनन्त दर्शन वाले थे। आँखों के सामने स्थित उन यशस्वी के धर्म और धैर्य को जानते हो, उसे देखो ॥ ३ ॥

(३५५) ऊपर नीचे तथा कोनेकी दिशाओंमें जितने जंगम-स्थावर प्राणी हैं, नित्य और अनित्य का विचारकर प्राज्ञने दीपककी भाँति सम्यक् धर्मको बतलाया ॥ ४ ॥

(३५६) वह थे सर्वदर्शी रागादिको पराजितकर ज्ञानी, लौकिक भोगसे विरत, धैर्यवान्, स्थिर-आत्मा, सारे जगत्में अनुपम विद्वान्, ग्रन्थियोंसे परे (निर्ग्रन्थ), निर्भय, और गतियों से मुक्त ॥ ५ ॥

(३५७) वे सत्यप्रज्ञ, नियताचारी (नियममुक्त विचरनेवाले) भवसागर पार, धीर, अनन्तदृष्टि, सूर्यसे अनुपम तपते, चमकनेवाले, अग्निरूपी इन्द्रकी भाँति अन्धकारको हटानेवाले थे ॥ ६ ॥

(३५८) अनन्त-जिनके इस धर्मके नेता मुनि काश्यप आशुप्रज्ञ थे, देवों के इन्द्रकी भांति महादिव्य शक्तिमान्, प्रज्ञारूपी हजार नेत्रोंवाले (शक्र) स्वर्गमें भी विशिष्ट ॥ ७ ॥

(३५९) वे प्रज्ञाके अक्षयसागर, सागरकी भाँति अनन्तपारग, चित्त (आस्रव) मलोंसे मुक्त, निर्दोष, इन्द्रकी भाँति प्रकाशमान देवाधिदेव थे ॥ ८ ॥

(३६०) वे वीर्य (पराक्रम) में परिपूर्ण, वीर्यवाले, पर्वतोंमें सर्वश्रेष्ठ सुदर्शन से, देवलोकवासियों को प्रमुदित करनेवाले, अनेक गुणोंसे युक्त हो विराजते थे ॥ ९ ॥

(३६१) पण्डक (वन) और वैजयंत (प्रासाद) वाला, लाख योजनोंका तीनभागों वाला (सुमेरु) है। वह निन्नानवें हजार (योजन) ऊपर उठा और एक हजार भूमि के नीचे (धँसा) है ॥ १० ॥

(३६२) (सुमेरु) आकाशको छूता भूमिपर स्थित है, जिसकी सूर्य-गण परिक्रमा करते हैं। वह सुवर्णवर्ण और नन्दनवनवाला है, जहाँ महेन्द्र लोग आनन्द करते हैं ॥ ११ ॥

(३६३) वह पर्वत शब्दसे ही प्रकाशवान् कांचन के चमकाये वर्णवाला विराजता है। गिरियों में अनुपम, और पर्वतोंमें दुर्गम, वह पर्वत-श्रेष्ठ भूमि का जाज्वल्यमान भाग है ॥ १२ ॥

(३६४) पर्वतराज महीके बीचमें स्थित, सूर्य समान स्वभाववाला दीखता है। वह नाना वर्णवाला मनोरमज्वालमाली इसप्रकार शोभासे प्रकाश करता है ॥ १३ ॥

(३६५) कीर्तिपर्वत (महान्) सुदर्शनगिरिके समान, ऐसी उपमावाले जन्म, कीर्ति, दर्शन, और ज्ञान एवं सदाचार वाले श्रमण-ज्ञातृपुत्र थे ॥१४॥

(३६६) जैसे लंबे (पर्वतों) में गिरिवर निषध, और गोल आकृतिवालों में रुचक श्रेष्ट है, वैसी उपमा है जगत्के सत्यप्रज्ञ की। पण्डित जन मुनियोंके बीच उन्हें श्रेष्ठ कहते हैं ॥१५॥

(३६७) अनुपम धर्मका उपदेश दे, वह अनुपम (श्रेष्ठ) ध्यान करते, जो ध्यान अतिशुक्लसे भी शुक्ल (शुद्ध), निर्दोप शंख और चन्द्रमा की भाँति नितान्त उज्जवल (शुक्ल) ॥१६॥

(३६८) सारे कर्मोको शोध (निर्जरा) कर वह महर्षि अनुपम (श्रेष्ठ) आदिमान्-पर अन्तरहित सिद्धिको प्राप्त ज्ञान, शील और दर्शन (विशेपाववोध ज्ञानसे) अनन्तप्रज्ञ हैं ॥१७॥

(३६९) वृक्षोंमें जैसे (स्वर्गका) शाल्मलि प्रसिद्ध है, जिसमें सुपर्ण (देवता) आनन्द अनुभव करते हैं, वनोंमें नन्दन को श्रेष्ठ कहते हैं, वैसे ही ज्ञान और शीलमें सत्यप्रज्ञ (महावीर) थे ॥१८॥

(३७०) जैसे शब्दों में बिजलीको अनुपम कहते, तारोंमें चन्द्रमा-को महाप्रतापी, गन्धोंमें चन्दनको श्रेष्ठ, वैसे ही मुनियों में (काम में) अलिप्त (महावीर) को कहते ॥१९॥

(३७१) जैसे सागरों में स्वयम्भू श्रेष्ठ, नागों में धरणेन्द्र(शेष) श्रेष्ठ, रसोंमें विजयी जैसे ईक्षु-रससमुद्रका जल, वैसे ही तप और प्रधान (ध्यान) में मुनि (महावीर) विजयी हैं ॥२०॥

(३७२) हाथियों में एरावत प्रसिद्ध है, मृगोंमें सिंह, जलोंमें गंगा, पक्षियोंमें वेणुदेव गरुड़, वैसे ही निर्वाणवादियोंमें (ज्ञातृपुत्र) प्रसिद्ध हैं ॥२१॥

(३७३) योद्धाओंमें जैसे प्रसिद्ध हैं विष्वक्सेन, फूलोंमें जैसे कमल, क्षत्रियोंमें जैसे दन्तवक्त्र को कहते हैं, वैसे ही ऋषियोंमें वर्धमान को ॥२२॥

(३७४) दानोंमें श्रेष्ठ है अभयदान, सत्योंमें (हिंसारूपी) दोष-से विरतिको, तथा तपोंमें ब्रह्मचर्यको कहते हैं,(वैसे ही) लोक में उत्तम हैं श्रमण ज्ञातृपुत्र ॥२३॥

(३७५) (योनिरूपी) स्थितियोंमें विमानवासी लवसप्तम देव (अनुत्तर विमानवासी) श्रेष्ठ हैं, सभाओंमें सुधर्मा सभा, सारे धर्मोंमें निर्वाण श्रेष्ठ है, वैसे ही ज्ञातृपुत्र से बढ़ कर ज्ञानी नहीं है ॥२४॥

(३७६) (वीर) पृथ्वी समान धीर हैं, दोष फेंकनेवाले, गेहत्यागी, वे आशुप्रज्ञ आसक्ति नहीं करते, समुद्र जैसे महाभवसागरको पार कर, वीर अभयंकर अनन्त दृष्टियुक्त हैं ॥२५॥

(३७७) क्रोध, अभिमान, तथा माया चौथे लोभ और अध्यात्मिक दोष, इनको वमन कर अर्हत् महर्षि न पाप करते हैं न कराते हैं ॥२६॥

(३७८) क्रिया और अक्रियाको, विनयवालों के वादको, अज्ञान-वादियोंके सिद्धान्तको भी जानते, इसप्रकार सारे वादोंको जानकर वह चिरकालके संयममें स्थित हुए ॥२७॥

(३७९) स्त्रियोंको और रातके भोजनको त्याग कर वह दुःख के नाशके लिए उपधान (प्रधान तप) युक्त हुये। इसलोक परलोक सारेको जानकर प्रभुने सारे पापोंको हटा दिया ॥२८॥

(३८०) अर्हत् (महावीर) भाषित धर्मको सुनकर, उसपर श्रद्धा करते जन आवागमन-रहित हो इन्द्र की भाँति देवराज होते हैं, होंगे, यह मैं कहता हूँ ॥२९॥

छठवां अध्ययन समाप्त

अध्ययन ७

शील-सदाचार

(३८१) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, तृण, वृक्ष, बीज और जंगम प्राणी, तथा जो अण्डज और जरायुज प्राणी, जो स्वेदज और रस से उत्पन्न कहे जाते हैं ॥ १ ॥

(३८२) ये काया मानी गई हैं। जानना चाहिए कि इनमें सुख की अभिलाषा होती हैं। इन कायाओं के साथ बुरा करके जो अपने लिए पाप-दण्ड(पाप कर्म)जुटाते हैं, वे इन(कायों में) उलटकर जनमते हैं ॥२॥

(३८३) आवागमन के पथ पर घूमते जंगम और स्थावरों में (जा) घात को प्राप्त होते हैं। वह बहुत क्रूर कर्म करने वाला जन्म-जन्म में जो करता है, उसी के साथ मूढ मरता है ॥३॥

(३८४) इस लोक में अथवा पर (लोक) में सैंकड़ों अथवा दूसरे (कर्मों) से संसार में आते, एक के बाद दूसरे में बंधते पापों को भोगते हैं ॥४॥

(३८५) जो माता-पिता को छोड़ श्रमणों का व्रत ले अग्नि-समारम्भ करते हैं, जो अपने सुख के लिए प्राणियों की हिंसा करते हैं, वे दुनिया में कुशील (दुराचार) धर्म वाले कहे गये हैं ॥५॥

(३८६) जलाने पर "जलते" प्राणियो को मारता है, बुझाने पर

(अग्नि) रूपी काया का वध करता है, इसलिये धर्मको समझ कर बुद्धिमान (पंडित) अग्नि परिचर्या न करे ॥६॥

(३८७) पृथ्वी भी जीव है, वायु भी जीव है, गिरने वाले प्राणी उनमें गिरते हैं, स्वेदज और काठ में रहने वाले प्राणी हैं। अग्नि परिचर्या करता उनको जलाता है ॥७॥

(३८८) हरे तृण प्राणी हैं, वृक्ष आदि में अलग-अलग रहने वाले भी (जीव) हैं। भोजन करके अपने सुख के लिए ढिठाई करके जो काटता है, वह वहुत प्राणियों का हिंसक होता है ॥८॥

(३८९) अपने सुख के लिए जो वीजों को उनके जन्म और विकास को नष्ट करता है, वह लोक में अनार्यधर्मी अपने को दण्ड का भागी वनाने वाला असंयमी है ॥९॥

(३९०) तृण-वनस्पति काटने वाले, वोलने और न वोलने की हालत में गर्भ में मरते हैं, कोई आदमी पांच चोटी करने वाले "शिशु" ही मर जाते हैं। जवान, अधेड और वूढे भी आयु के समाप्त होने पर जीवन से हाथ धो वैठते हैं ॥१०॥

(३९१) हे प्राणियो, मानवपन को समझो। भय देख मूर्ख द्वारा उसे अलभ्य जानों। विल्कुल दुःखमय और ज्वर युक्त है लोक अपने ही कर्मों से उलटे (दुःख) को पाता है ॥११॥

(३९२) यहां कोई मूढ नमकीन आहार के छोड़ने से मोक्ष वतलाते हैं, और कोई ठंडे जल के सेवन से, दूसरे हवन से मोक्ष वतलाते हैं ॥१२॥

(३९३) सवेरे नहाने आदि से मोक्ष नहीं होता, न नमक के न खाने से ही। वे मद्य, माँस, लसुन को खाकर कहीं (अनन्त)संसार में वास करते हैं ॥१३॥

(३९४) सवेरे-शाम जल छूते (नहाते), पानी द्वारा सिद्धि

वतलाते हैं। यदि जल के स्पर्श से सिद्धि होती (तो), जल के वहुत से प्राणी सिद्ध (मुक्त) हो जातें ॥१४॥

(३९५) जैसे मछली, कछुवे, रेंगने वाले, मांगुर, जल-ऊंट और जल-राक्षस। जो जल से सिद्धि कहते हैं, उसे पण्डित जन अयुक्त कहते हैं ॥१५॥

(३९६) जो जल कर्म-मल को हरण करे, यह शुभ (वात) केवल इच्छा भर है, मन्दवुद्धि दूसरे मतवाले अंधे नेता का अनुगमन करते इस प्रकार (नहाकर) प्राणियों का नाश करते हैं ॥१६॥

(३९७) पाप कर्म करनेवालोंका यदि ठंडा जल (पाप) हर ले, तो जलके जन्तुओंको मारनेवाले (मछुये) सिद्ध हो जायें । जलसे सिद्धि वतलानेवाले झूंठ वोलते हैं ॥१७॥

(३९८) सायं-प्रातः अग्नि परिचर्या करते हवन द्वारा सिद्धि वतलाते हैं, ऐसा हो, तो अग्निका आरम्भ करनेवाले कुकर्मी को भी सिद्धि (मुक्ति) मिल जाय ॥१८॥

(३९९) विना विचारे यूंही सिद्धि नहीं होती। न जानते वे (जन) नाश को प्राप्त होंगे। विद्या ग्रहण कर स्थावर-जंगम प्राणियोंमें भी सुखकी इच्छा होती है, इसे जानो ॥१९॥

(४००) (पाप-कर्मी) अलग-अलग चिल्लाते हैं, नष्ट होते हैं, भय खाते हैं। यह जानकर विद्वान् उस पापसे विरत-आत्मसंयमी हो देखकर जंगम प्राणियोंको न सताये ॥२०॥

(४०१) जो धर्मसे प्राप्त रखे आहार को छोड़कर स्वादिष्टको खाता है, नहाता है, जो कपड़ेको धोता-सजाता है; वह निर्ग्रन्थी साधुपनसे दूर कहा गया ॥२१॥

(४०२) धीर पुरुष जलमें नहानेको कर्म-वन्धन जान, मोक्षतक ठीक (गर्म) जलसे जीवन विताता, वीजों और कन्दोंको न खाता स्नानादि और स्त्रीमें विरत रहे ॥२२॥

(४०३) जो माता और पिताको, तथा पुत्र, पशु और धनको छोड़ कर, स्वादु भोजन वाले कुलोंमें दौड़ता है, वह श्रमणभावसे बहुत दूर कहा गया ॥२३॥

(४०४) जो स्वादवाले कुलोंमें दौड़ता है, पेट भरनेके लिये धर्म-कथा कहता है, जो भोजनके लिये अपनी प्रशंसा करवाता है, वह आचार्यों का शतांश भी नहीं ॥२४॥

(४०५) घर छोड़, दूसरेके दिये भोजनके लिये दीन, पेटके लोभके लिये चापलूसी करने वाला होता है, वह चारेके लोभी महासूअर की भाँति जल्दी नाश को प्राप्त होगा ॥२५॥

(४०६) इस लोकके अन्न-पानको सेवन करता, मीठा बोलता है, वह पार्श्वस्थ और कुशील भावको प्राप्त हो पुआलकी भाँति निस्सार है ॥२६॥

(४०७) अज्ञातपिण्डसे (जीवन) यापन करे, (अपनी) तपस्यासे पूजाकी कामना न करे, शब्दों और रूपोंमें आसक्त न हो, सभी भोगों का लोभ छोड़े ॥२७॥

(४०८) सभी संसर्गोंको त्यागकर धीर (पुरुष) सारे दुःखोंको सहता निर्दोष, निर्लोभ, अनियतचारी भिक्षु भयरहित और निर्मल आत्मा हो विचरे ॥२८॥

(४०९) मुनि व्रतभारवहनके लिये खाये, भिक्षु पापसे अलग रहना चाहे, दुःखसे पीड़ित होनेपर धैर्य धरे, युद्धभूमिमें (योद्धाकी) तरह कामादि शत्रुओं का दमन करे ॥२९॥

(४१०) काठके तख्तेकी भाँति काटा मारा जाता भी मृत्युका समागम चाहता है, कर्मको हटा, धुरी टूटी गाड़ीकी नाई वह आवा-गमनमें नहीं जाता, यह मैं कहता हूँ ॥३०॥

॥ सातवाँ अध्ययन समाप्त ॥

वीर्य-अध्ययन ८

वीर्य (उद्योग)

(४११) यह स्वाख्यात वीर्य दो प्रकारका कहा गया है। वीर (जिन) की क्या वीरता है, कैसे वह कही जाती है ? ॥१॥

(४१२) हे सुव्रतो, कोई कर्मको (वीर्य) कहते हैं, कोई अकर्म को भी, इन दोनों रूपोंमें मनुष्य उन्हें देखते हैं ॥२॥

(४१३) (तीर्थकरोंने) प्रमादको कर्म कहा है, अप्रमादको दूसरा अ-कर्म। उनके होनेको कहनेसे भी पण्डित और मूर्खका वीर्य कहा जाता है ॥३॥

(४१४) कोई प्राणियोंके मारनेके लिए शास्त्र (वेद) पढ़ाते हैं, कोई प्राणिहिंसा प्रतिपादक(वेद)मंत्रोंको पढ़ते हैं ॥४॥

(४१५) ये मायावी माया रच(ने पर) कामभोगोंका सेवन करते हैं, अपने सुखका अनुगमन करते हनन, छेदन और कर्तन करने वाले होते हैं ॥५॥

(४१६) मन और वचनसे, अन्तमें कायासे भी इस लोक या परलोक दोनों प्रकारसे असंयमी होते हैं ॥६॥

(४१७) वैरी वैर करता है, फिर वैरों के साथ रक्तपात होता है। पापकी ओर ले जानेवाली हिंसा अंतमें दुःखमें फाँसती है ॥७॥

(४१८) स्वयं पाप करनेवाले परलोकमें वंधते हैं, वे मूढ रागद्वेषमें पड़े बहुतसा पाप कमाते हैं ॥८॥

(४१९) यह कर्म सहित वीर्य मूढोंका वतलाया गया, अब पण्डितोंका कर्म-रहित वीर्य मुझसे सुनो ॥९॥

(४२०) (मोक्षगामी पुरुष) बंधनसे मुक्त, चारों ओर से बंधन-टूटा, पापकर्मको हटा, अन्तमें (भवसागर रूपी) शल्यको काट देता है ॥१०॥

(४२१) सुकथित नेताको पा पण्डित प्रयत्न करता है, वैसे ही मूढ फिर-और-फिर दुःख-निवास और अशुभताको पाता है ॥११॥

(४२२) स्थानारूढ (अपने) विविध पदोंको छोड़ जायेंगे, इसमें संशय नहीं, भाई-वंदों और मित्रोंके साथ वास नित्य नहीं हैं ॥१२॥

(४२३) ऐसा सोचकर बुद्धिमान् अपने लोभको छोड़ दे ,सभी दूसरे धर्मों से निर्मल इस आर्य (धर्म) को स्वीकार करें ॥१३॥

(४२४) धर्मके सारको अच्छी बुद्धिसे जान या सुनकर, अनागारिक (गृहत्यागी) बनकर पापका प्रत्याख्यान कर धर्म में स्थित होता है ॥१४॥

(४२५) जिस किसी तरह पण्डित अपने आयुके क्षयको जाने,(फिर) तो उसके बीच ही में जल्दी संलेखना रूपी शिक्षाका सेवन करे ॥१५॥

(४२६) जैसे कछुआ अपनी देहमें अंगों को संकुचित कर लेता है, वैसे ही बुद्धिमान् पापोके प्रति अपने भीतर संकुचित कर दे ॥१६॥

(४२७) हाथों-पैरोंको, मन और पांचों इन्द्रियों को भी संकुचित कर ले, बुरे परिणामों को और भाषाके दोषों को भी ॥१७॥

(४२८) उसे अच्छी तरह जान अभिमान और माया थोडी भी न करे। सुख-सम्मानसे रहित, उपशान्त, और चिन्ता रहित हो विहरै ॥१८॥

(४२९) प्राणोंको न मारे, विना दिये को न लेवे, माया न करते, झूठ न बोले, संयमीका यह धर्म है ॥१९॥

(४३०) वचन और मनसे भी (दुःख देनेकी) कामना न करे, सब ओर से संयमन और दमन को ग्रहण कर (अच्छी तरह) संयत रहे ॥२०॥

(४३१) आत्मसंयत और जितेन्द्रिय (मुनिजन) किये, किये जाते या भविष्यके पापकी अनुमति नहीं देते ॥२१॥

(४३२) जो वीर महाभाग बुद्ध (तत्वज्ञ) नहीं, सम्यक्-दर्शन वाले नहीं, उनका पराक्रम अशुद्ध रहा, वह सर्वथा कर्मोंके विपाकवाला है ॥२२॥

(४३३) जो वीर महाभाग बुद्ध-ज्ञानी और सम्यक्‌दर्शन वाले हैं, उनका किया हुआ पराक्रम शुद्ध है, सर्वथा विपाक-रहित है ॥२३॥

(४३४) जो महाकुलसे निकल पड़े, उनका भी तप शुद्ध नहीं। अपनी प्रशंसा नहीं जतलानी चाहिये, जिसमें कि दूसरे भी ऐसा न जानें ॥२४॥

(४३५) सुव्रत (पुरुष) थोडा भोजन करे, थोडा बोले, सदा क्षमा-युक्त, सन्तुष्ट, दान्त, लोभरहित रहनेकी कोशिश करे, ॥२५॥

(४३६) ध्यानयोगको पूरे तौर से ग्रहण कर, कायाको चारों ओर से संयत कर तितिक्षाको परम वस्तु जान (आदमी) मोक्ष तकके लिए परिव्राजक (संयम-साधक) बने ॥२६॥

॥ आठवाँ अध्ययन समाप्त ॥

अध्ययन ९

धर्म

(४३७) अन्तेवासी-जंबूने पूछा—मतिमान् ब्राह्मण (महावीर) ने कौनसे धर्म बतलाये हैं ? सुधर्माचार्य बोले—जिनोंके सरल धर्म को जैसा है वैसे मुझसे सुनों ! ॥१॥

(४३८) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य चाण्डाल और बोक्सा† (पुक्कस) बहेलिये, वेश्यायें, शूद्र और दूसरे हिंसारत (पुरुष) हैं ॥२॥

(४३९) (जो)भोगोंके परिग्रहणमें फंसे (उनका) परस्पर वैर बढ़ता है। काम (भोग) हिंसा आदि आरम्भोंसे मिश्रित है, अतः वे दुःख-विमोचक नहीं है ॥३॥

(४४०) धन के चाहनेवाले कुटुम्ब-परिवार के लोग चिता पर जलाकर धन को हरते हैं। कर्म करनेवाला (मृत) (अपने) कर्मों द्वारा काटा जाता है ॥४॥

---

† देहरादूनमें सबसे पिछडी वह जाति बोक्सा है।

(४४१) अपने कर्मों द्वारा नष्ट होते (हे पुरुष) तुझे माता, पिता, वधू, पत्नी, भाई, और औरस पुत्र कोई नहीं बचा सकते ॥५॥

(४४२) इस भेदको समझकर भिक्षु निर्मम, निरहंकार हो, परम-अर्थ (मुक्ति की) ओर ले जानेवाले जिन द्वारा कथित(धर्म) का आचरण करे ॥६॥

(४४३) धन, पुत्र, कुटुम्ब-कवीले तथा परिग्रह छोड़, और आन्त-रिक शोकको भी छोडकर अपेक्षा-रहित हो साधु हो जाये ॥७॥

(४४४) पृथिवी, पानी, अग्नि वायु, तृण, वृक्ष, और बीज सहित दूसरे (पदार्थ) अण्डज, पोत, जरायुज, रस और स्वेद से उत्पन्न एवं उद्भिज्ज ॥८॥

(४४५) ये छ काय हैं। सो विद्वान् मन, वचन और काया से इनकी हिंसा न करे, न परिग्रह ही धारण करे ॥९॥

(४४६) झूठ बोलना, मैथुन, परिग्रह और चोरी, ये लोकमें (हिंसार्थ) हथियार उठाने जैसे हैं, इन्हें विद्वान् त्यागे ॥१०॥

(४४७) माया, लोभ, क्रोध तथा मानको त्याग दे, ये लोकमें बंधन (कारण) हैं, इसे विद्वान् त्यागे ॥११॥

(४४८) धोना, रंगना, वस्तिकर्म, विरेचन, वमनकर्म, और आखों-में अंजन (ये) विघ्न हैं, इसे विद्वान् त्यागे ॥१२॥

(४४९) गंध, माला, स्नान (का व्यवहार) तथा दांत धोना, परिग्रह और स्त्रीभोग विघ्न हैं, इसे विद्वान् त्यागे ॥१३॥

(४५०) (साधु के) निमित्तसे बने या खरीदे या उधार लिये गये (भोजन) एवं आधा कर्म युक्त, तथा जो अपेक्षणीय नहीं, इसे विद्वान त्यागे ॥१४॥

(४५१) बलकर, (रसायन) और नेत्र अंजन, लोभ और हिंसा-कर्म, प्रक्षालन, और उबटन लगाना, इसे विद्वान त्यागे ॥१५॥

(४५२) संलाप और (अपने) किये व्रतकी प्रशंसा, एवं (ज्योतिषके) प्रश्नोंका भाखना, मकानवाले का पिण्ड, इसे विद्वान् त्यागे ॥१६॥

(४५३) जूआ न सीखे, अधार्मिक वचन न बोले, हाथसे वीर्यपात, और झगड़ा, इसे विद्वान् त्यागे ॥१७॥

(४५४) जूता और छाता, नालीवाला जूआ, वातव्यजन (चमर) और परस्पर परिक्रिया; इसे विद्वान् त्यागे ॥१८॥

(४५५) मुनि हरे (सूखे) घासमें पेशाव-पाखाना न करे, (बीज-आदि) हटा निर्जीव जलसे भी कभी आचमन न करे ॥१९॥

(४५६) कभी दूसरे (गृहस्थ) के बर्तन में अन्न-पान न खाये। अचेल (होनेपर) भी दूसरे के वस्त्र को, विद्वान् त्यागे ॥२०॥

(४५७) मँचिया-पीढ़ी, पलंग, एवं घरके भीतर बैठना, कुशल-प्रश्न पूछना या पहले (संबंध) को स्मरण करना; इसे विद्वान् त्यागे ॥२१॥

(४५८) यश-कीर्ति, और प्रशंसा तथा जो लोकमें वन्दना-पूजना हैं, एवं लोकमें जो सारे भोग हैं; इसे विद्वान् त्यागे ॥२२॥

(४५९) जिससे भिक्षुका संयम टूटे, वैसे अन्न-पान को दूसरे (भिक्षुओं) को देना, इसे विद्वान् त्यागे ॥२३॥

(४६०) निर्ग्रन्थ महावीर महामुनिने ऐसा कहा, अनन्त-ज्ञान और अनन्त-दर्शनवाले उन्होंने धर्मका उपदेश दिया ॥२४॥

(४६१) भाषण करते न भाषण करतासा रहे, (दूसरे के मनको) दुःखानेवाली बात न करे, छलको वर्जित करे, सोचे बिना न बोले ॥२५॥

(४६२) वहाँ यह (झूठ मिली) तीसरे तरहकी भाषा है, जिसे बोलकर आदमी पछताता है। जो(लोक व्यवहारमें) छिपाके रक्खा जाता है, उसे न कहना, यह निर्ग्रन्थ (महावीर) की आज्ञा है ॥२६॥

(४६३) रेकारी(निष्ठुर-मारने जैसी),दोस्त (कह वात करना)गोत्र-के नाम लेके चापलूसीसे वात न करे। 'तू-तू' कह कठोर वचनका प्रयोग भी न करें ॥२७॥

(४६४) भिक्षु सदा कुशीलता से रहित रहे, न उनके संगको सेवे, उनके साथ सुखरूपवाले उपसर्ग रहते हैं, इसे विद्वान् समझे ॥२८॥

(४६५) (अलंघ्य) वाधा विना दूसरेके घरमें न वैठे। गाँवके बच्चों-की क्रीड़ाको (देख) मुनि मर्यादा-रहित हो न हँसे ॥२९॥

(४६६) उदार (भोगों) में उत्कण्ठा न करे, यत्नशील हो (साधु) नियमका पालन करे, (भिक्षुओंकी) चर्यामें आलस न करे, दुःख पड़ने-पर उसे सहे ॥३०॥

(४६७) मारे जाने पर कोप न करे, दुर्वचन कहे जाने पर उत्तेजित न होवे, सुमन हो वाधाको सहे, और कोलाहल न करे ॥३१॥

(४६८) मिले भोगोंकी चाह न करे, ऐसा होना विवेक कहा जा[illegible] है। बुद्धों (ज्ञानियों) के पास सदा आर्य (अच्छे) कर्मोको सीखे, ॥[illegible]

(४६९) सुप्रज्ञ, सुतपस्वी-गुरुकी सूश्रूपा करते पास रहे। वीर, [illegible] ज्ञान के इच्छुक, धीर और जितेन्द्रिय (ऐसा ही करते हैं) ॥३३॥

(४७०) घरवासमें ज्ञानके प्रकाशको न देख पुरुषोंमें आ[illegible] नर, वीरको पाकर वन्धनसे मुक्त हो जीनेके इच्छुक नहीं होते ॥[illegible]

(४७१) शब्द और स्पर्श (के भोगों) में लोभरहित हो, बुरे[illegible] में लिप्त न हो, जाने कि जो (यहाँ) निषिद्ध किया गया, सो सा[illegible] कर्म जिन-धर्म के विरुद्ध है ॥३५॥

(४७२) (जो) अभिमान और माया (है), उसे पण्डित छोड़, [illegible] ही सारे गौरव भूत (भोगों) को भी छोड़ मुनि निर्वाण की का[illegible] करे ॥३६॥

॥ नवम अध्ययन समाप्त ॥

समाधि-अध्ययन १०

समाधि

(४७३) मतिमान् (भगवान् महावीर) ने अनुचिन्तन कर समाधि-के सरल धर्म बतलाये, उन्हें सुनो। निष्काम भिक्षु समाधि प्राप्त कर प्राणियोंको हानि न पहुँचाता सा बने ॥१॥

(४७४) ऊपर, नीचे और टेढ़ी दिशाओंमें जो स्थावर और जंगम प्राणी हैं, उनके प्रति हाथ और पैर से संयमकर, दूसरोंके न दिये को न ले ॥२॥

(४७५) जिनका धर्म स्वाख्यात है, उसमें सन्देह मुक्त सन्तुष्ट हो प्रजाओंके साथ अपने समान व्यवहार करे। इस जीवनकी इच्छा करते आमदनी न करे। सुतपस्वी भिक्षु संचयमें न लगे ॥३॥

(४७६) (स्त्री) जनोंमें सब इन्द्रियों से संयत हो, मुनि सर्वथा स्वतन्त्र हो विचरे। प्राणियों को, अलग-अलग जन्तुओंको दुःखसे सताये जाते देख (दया करे) ॥४॥

(४७७) इनको हानि पहुँचाते मूढ पाप कर्म वाली योनियोंमें घूमता है, (स्वयं) हिंसा करते पाप कर्म करता है, दूसरोंको लगाकर भी (पाप) करता है ॥५॥

(४७८) दीन (भिक्षु) वृत्ति हो तो भी पाप करता है, यह जान उन्होंने एकान्त समाधि का उपदेश दिया, बुद्ध (जानकर) समाधि और विवेक (एकान्त) रत, आत्मस्थ हो प्राणिहिंसासे विरत हो ॥६॥

(४७९) सारे जगत् को समतासे देखते, किसीका भी प्रिय-अप्रिय न करे। दूसरे (प्रव्रज्या)में उत्थित हो फिर दीन और विषण्ण हो पूजा तथा प्रशंसा के इच्छुक हो जाते हैं ॥७॥

(४८०) आधाकर्म (भिक्षुके निमित्त बने आहार) का इच्छुक हो,

नियम करते बुरेका चाहक होता, मूर्ख स्त्रियोंमें अलग आसक्त हो, और (उसके लिये) परिग्रह करता है ॥८॥

(४८१) वैरमें (बंधा (पाप)-संचय करता है, यहाँसे च्युत हो दुःखकर (स्थानों) में जाता। इसलिए मेधावी (पुरुष) धर्मको समझकर, चारों ओर से मुक्त हो, मुनिधर्मका आचरण करे ॥९॥

(४८२) जीवनकी कामना, आमदनी न करे, अनासक्त हो साधु बने, सोचकर बोलते, लोभको हटा, हिंसायुक्त बात न करे, ॥१०॥

(४८३) आधाकर्म की कामना न करे, कामना करने वाले का संसर्ग न करे। बिना कामना करते उदार भोगको छोड़, शोक छोड़, अपेक्षा-रहित हो विचरे ॥११॥

(४८४) एकत्व-भावनामें रहनेकी कामना करे, एकत्वसे मुक्ति पाना सत्य माने। यह मोक्ष सत्य और प्रधान है, (उसे) सत्यरत अक्रोधी तपस्वी पाता है ॥१२॥

(४८५) जो स्त्रियोंमें मैथुन विरत होता, और परिग्रह को नहीं करता, नाना विषयों में (प्राण-)रक्षी होता, वह भिक्षु निःसंशय समाधि-प्राप्त है ॥१३॥

(४८६) अरति-रतिको हटा कर भिक्षु तृणादिकी चोट तथा शीत-की चोटको, गर्मी और डसनेको, सहे। दुर्गन्ध और सुगन्धको बर्दाश्त करे ॥१४॥

(४८७) वाणी से संयत, समाधि प्राप्त हो, अच्छी लेश्याओंको ले साधु बने। घर न छाये न छवाये, लोगोंके मेल-जोल को छोड़ दे ॥१५॥

(४८८) जो कोई दुनियामें अक्रिय-आत्मवाले (सांख्य), दूसरों-के पूछनेपर मोक्षका उपदेश करते; वे दुष्कर्ममें आसक्त, लोकमें लुब्ध, विमोक्ष के कारण उस धर्मको नहीं जानते ॥१६॥

(४८९) यहाँ आदमियोंकी भिन्न रुचि होती है। क्रिया, अक्रिया, अलग-अलग (वाद) को मानते, जन्मे बालक की देहतकको काटकर, असंयमी वैर बढ़ाता है ॥१७॥

(४९०) आयुके विनाशको न जानता, ममतामें पड़ा, मन्द और सहसा काम करनेवाला अजरामर (मान) मूर्ख विषयोंमें लिप्त हो रात-दिन सन्तप्त होता है ॥१८॥

(४९१) धनको, सारे पशुओंको छोड़ो, जो प्रिय बाँधव और मित्र हैं, (उन्हें भी), रोते हैं, मूर्छित होते हैं, सो दूसरे (लोग) इसके धनको हरते हैं ॥१९॥

(४९२) छोटे जानवर जैसे सिंहके पास चरते, डरके मारे दूर-दूर रहते हैं; इसीतरह मेधावी धर्मको जानकर दूरसे ही पापको छोड़ दे ॥२०॥

(४९३) मतिमान् नर जानते पापसे अपनेको हटाये, यह जान कर कि, दुःख हिंसासे पैदा होते हैं और भारी भय वैरसे गुंथे हैं ॥२१॥

(४९४) आप्तोंका अनुगामी मुनि झूठ न बोले। यह झूठ का त्याग परम समाधि है। झूठ बोलना स्वयं न करे, न कराये, दूसरे के करनेका अनुमोदन न करे ॥२२॥

(४९५) शुद्ध रहे, मिले आहारको न दूषित करे; उसमें लिप्त और आसक्त न हो, धैर्यशील और मुक्त हो प्रशंसाकी कामना न कर प्रव्रजित होये ॥२३॥

(४९६) कांक्षारहित हो घरसे निकल आसक्तिहीन हो काया-को छोड़े। न जीवन चाहे न मरण, भवके फंदेसे मुक्त हो भिक्षु विचरे ॥२४॥

दशवाँ अध्ययन समाप्त

मार्ग—अध्ययन ११

मार्ग

(४९७) मतिमान् ब्राह्मण (ज्ञातृपुत्र) ने कौनसा मार्ग वतलाया है, जिस सीधे मार्गको पाकर दुस्तर (संसार) सागरको तरते हैं ॥१॥

(४९८) उस सर्वदुःख मोचक, शुद्ध, अनुपम मार्गको हे भिक्षु, तुम जैसे जानते हो, महामुनि वैसा वतलाओ ॥२॥

(४९९) यदि हमें देव या मनुष्य कोई पूछें, तो उनको "कैसा मार्ग है" यह हम कहेंगे ॥३॥

(५००) यदि तुमसे कोई देव या मनुष्य पूछें, उन्हें यह कहना, मार्गके सारको मुझसे सुनो ॥४॥

(५०१) काश्यप (ज्ञातृपुत्र) के क्रमशः वतलाये महाकठिन मार्ग) को (सुनो), जिसको लेकर इससे पहले (वहुतेरे), समुद्रको व्यापारीकी भांति तर गये ॥५॥

(५०२) तर गये, कितने तर रहे हैं, और आगे तरेंगे; उसे भगवान्-से सुनकर मैं कहता हूँ, मेरी उस (वात) को प्राणी सुनें ॥६॥

(५०३) पृथिवी जीव अलग प्राणी हैं, वैसे ही जल और अग्नि भी जीव हैं, वायुस्थ जीव अलग प्राणी हैं, वैसे ही तृण, वृक्ष और वीज भी ॥७॥

(५०४) और दूसरे स्थावर प्राणी हैं, इस प्रकार छ प्राणि-काय कहे गये। इतना भर जीव-काय है, इससे परे नहीं है ॥८॥

(५०५) सारी युक्तियोंसे बुद्धिमान् इसे लखकर कोई दुःख नहीं पसंद करता (यह सोच), किसीकी हिंसा न करे ॥९॥

(५०६) महा ज्ञानियों के (कथन) का सार है, जोकि किसीकी हिंसा न करे, अहिंसा के समय (सिद्धान्त)को भी इतना ही जाने ॥१०॥

(५०७) ऊपर, नीचे और तिरछी दिशाओंमें जो भी जंगम और

स्थावर (प्राणी) हैं, सर्वत्र विरति करें; वहीं शान्ति (विरति) निर्वाण कही गई है ॥११॥

(५०८) समर्थ हो दोषोंको हटा, मनसा, वाचा और अन्तमें कायासे भी किसीका विरोध न करे ॥१२॥

(५०९) एषणाओंको हटा, धीर, और संयमी हो, प्राज्ञ विहरे। एषणा-समितिसे युक्त न चाहनेके आहारों को नित्य वरजे ॥१३॥

(५१०) प्राणियोंको दुःख दे, अपनेलिये जो भोजन बनाया गया हो; सुसंयमी (पुरुष) वैसे अन्नपान को न ग्रहण करे ॥१४॥

(५११) पूतिकर्म आहारको न सेवे (यह) संयमियों का धर्म है। किसी चीजकी आकांक्षा करना, सर्वथा विहित नहीं है ॥१५॥

(५१२) आत्म-संयमी जितेन्द्रिय (मुनि) मारनेवाले का अनुमोदन न करे। गावों और नगरोंमें श्रद्धालुओंका निवास होता है,(उनके ख्यालसे भी) ॥१६॥

(५१३) ऐसी वाणीको सुनकर पुण्य होता है, यह न कहे। "पुण्य नहीं" ऐसा कहनेमें भी महाभय है ॥१७॥

(५१४) दानके लिये जो जंगम-स्थावर मारे जाते हैं, उनकी रक्षाके लिये भी इससे (पुण्य) करना होता है, यह भी नहीं कहे ॥१८॥

(५१५) वैसा अन्न-पान जिन (प्राणियों) के लिये विहित है, उनके लाभमें बाधा होगी, इसलिये "नहीं" कहना ठीक नहीं है ॥१९॥

(५१६) जो दानकी प्रशंसा करते हैं, प्राणियोंका वध भी चाहते हैं, जो उस वधका निषेध करते हैं, वे किसी की वृत्तिका छेद करते हैं ॥२०॥

(५१७) "है या नहीं" दोनों प्रकारसे ये नहीं बोलते, कर्मके आगमनको छोड़कर, वे निर्वाण को प्राप्त होते हैं ॥२१॥

(५१८) जैसे नक्षत्रोंमें चन्द्रमा (श्रेष्ठ है), वैसे ही निर्वाण (के संबंध में) बुद्ध जानें। इसलिये सदा संयत और दमित हो, मुनि निर्वाणकी साधना करे ॥२२॥

(५१९) किये जाते अपने कर्मों द्वारा बहे जाते प्राणियोंके लिये, तीर्थंकर जो कहते हैं, वही सुन्दर शरण-स्थान है, इसे प्रतिष्ठा कहा जाता है ॥२३॥

(५२०) आत्म-रक्षित, सदा दमनयुत, (कर्मप्रकृति) धारा तोड़े और जो चित्तमलोंसे रहित (पुरुष) है; वही शुद्ध परिपूर्ण अनुपम धर्मको बतलाता है ॥२४॥

(५२१) उस धर्मको न जानते, अ-बुद्ध होते अपने को बुद्ध मानने-वाले, "हम बुद्ध हैं" यह मानते (हैं, वे) समाधिसे बहुत दूर हैं ॥२५॥

(५२२) वे बीज, कच्चा जल, तथा उनके उद्देश्यसे जो भोजन बना होता है, उसे खाकर खेद न करते समाधि-रहित हो ध्यान लगाते हैं ॥२६॥

(५२३) जैसे चील, कौये, कुरर, मद्गुक, बगले, मछली की चाह रखते ध्याते हैं; वैसा ही (उनका) यह ध्यान मलिन और अधम है ॥२७॥

(५२४) ऐसे ही कोई-कोई श्रमण मिथ्यादृष्टि, अनार्य श्रमण विषयकी कामनासे ध्याते हैं, (उनका) वह ध्यान मलिन और अधम है ॥२८॥

(५२५) यहां कोई-कोई दुर्मति शुद्ध-मार्गका विरोध करते मार्गभ्रष्ट हैं . वे दुःख और नाशको पायेंगे ॥२९॥

(५२६) जैसे जन्मका अन्धा चढ़नेमें बुरी, चूने वाली नाव पर चढ़कर पार जाना चाहता है; सो बीचमें ही डूबता है ॥३०॥

(५२७) ऐसे ही मिथ्यात्वी-अनार्य-श्रमण आस्रव को पूरा सेवन कर महाभय को प्राप्त होंगे ॥३१॥

(५२८) काश्यप (भगवान) द्वारा जतलाये इस धर्मको लेकर, महाघोर, धाराको तरे, अपनी रक्षाके लिये प्रव्रजित होये ॥३२॥

(५२९) (मैथुन आदि) ग्राम्य धर्मोंसे विरत हो, जगतमें जो

कोई प्राणी हैं, उन्हें अपने समान मानते, दृढ़ता पूर्वक प्रव्रजित होये ॥३३॥

(५३०) अभिमान और मायाको छोड़कर पण्डित (जन) इस सबको निराकरण कर, मुनि निर्वाण को साधे ॥३४॥

(५३१) अच्छे धर्मका सन्धान करे, बुरे धर्म (पाप) का निराकरण करे; प्रधानमें भिक्षु तत्पर हो, क्रोध और मानको छोड़ दे ॥३५॥

(५३२) अतीतमें जो बुद्ध थे, और जो भविष्यमें होंगे; उनकी प्रतिष्ठा शान्तिमें हैं, जैसे प्राणियों की पृथ्वी पर* ॥३६॥

(५३३) व्रत पर आरूढ़ के सामने नाना प्रकारकी बाधायें आन उपस्थित हों, तो उनके सामने न झुके; जैसे वायुके सामने पर्वत नहीं झुकता ॥३७॥

(५३४) एषणाओंको हटा, धीर संयमी हो प्राज्ञ पुरुष विहरे, शान्त हो कालके आनेकी कामना करे ॥ यह है केवली (तीर्थंकरों) का मत । सो मैं (जंबू !) कहता हूँ ॥३८॥

॥ ग्यारहवां अध्ययन समाप्त ॥

अध्ययन १२

समवसरण

(५३५) ये चार समवसरण (मेला) हैं, जिन्हें दूसरे मतवाले दूसरी तरह बतलाते हैं—क्रिया, अ-क्रिया, तीसरा विनय और अज्ञानको चौथा कहते हैं ॥१॥

(५३६) ये अज्ञानी होते अपनेको चतुर समझते, सन्देह-न-रहित

---

* ये च बुद्धा अतीता च ये च बुद्धा अनागता ।

झूठ वोलते हैं, अ-पण्डित हो, अ-पण्डितोंसे कहते, विना चिन्तन किये ये मिथ्या वोलते हैं ॥२॥

(५३७) सचको न-सच समझते, अ-साधु (बुरे) को साधु बतलाते, जो यहाँ बहुत से विनयवादी जन हैं, पूछनेपर विनयको ही मोक्षमें लेजानेवाला बतलाते हैं ॥३॥

(५३८) विना जाने वे **विनयवादी** ऐसा कहते हैं—"हमें वात ऐसी ही दीखती है", कर्मको सन्देहकी दृष्टिसे देखनेवाले अक्रिया-वादी भविष्यमें क्रियाके अभावको वतलाते हैं ॥४॥

(५३९) वे (**भौतिकवादी**) वाणी द्वारा गोल-मोल वात करते जवाव न दे चुप साध जाते हैं, इस दूसरे वचनको विरोध सहित और अपने को विपक्षरहित वतलाते कर्मको (वाक्) छल कहते हैं ॥५॥

(५४०) विना जाने ही वे (अक्रियावादी) नाना प्रकारके (वादों-को) वतलाते हैं। जिस (वाद) को लेकर वहुत से लोग संसारमें भूले रहते हैं ॥६॥

(५४१) (शून्यवादी कहते हैं—) सूर्य न उगता न अस्त होता, चन्द्रमा न वढ़ता न घटता है, जल न सरकता, न वायु वहता। सारा लोक झूठा और सत्ताहीन है ॥७॥

(५४२) जैसे नेत्रहीन अन्धा प्रकाशके साथ भी रूपोंको नहीं देखता; ऐसे ही प्रज्ञाहीन अक्रियावादी क्रियाके होते भी (उसे) नहीं देख पाते ॥८॥

(५४३) संवत्सरको, स्वप्न लक्षणको, शकुनादि निमित्तको, देह, (पुच्छलतारा आदि) उत्पातोंको, ऐसे अंगोंवाले शास्त्रोंको पढ़ कर वहुतेरे दुनियामें "भविष्यको जानते हैं" यह दावा करते हैं ॥९॥

(५४४) कुछ निमित्त सच्चे होते (पर) किन्हीं का ज्ञान उलटा होता। वे विद्याके भावको न पढ़ते, विद्याके त्याग की ही वात करते हैं ॥ १० ॥

(५४५) वे (बौद्ध और ब्राह्मण) लोकके पास आ ऐसा कहते है, "दुःख अपना किया है, दूसरे का किया नहीं," पर (तीर्थंकर) कहते हैं, ज्ञान और कर्मसे मोक्षकी प्राप्ति को ॥ ११ ॥

(५४६) वे (तीर्थंकर) लोकके नेता और नायक, प्रजाओंके हितार्थ मार्गका उपदेश करते हैं । वैसे-वैसे लोकको शासित बतलाते, जिसमें हे मानव ! (तू) अत्यन्त लिप्त है ॥ १२ ॥

(५४७) जो राक्षस या यमलोकवाले हैं, अथवा जो देव तथा गन्धर्व समुदाय के हैं; आकाशगामी अथवा पृथ्वी पर आश्रित, वे फिर-फिर आवागमन में पड़ते हैं ॥ १३ ॥

(५४८) जिसको अपार सलिल की बाढ़ कहा, उसे दुर्मोक्ष गहन-संसार जानो । जहाँ विषयरूपी अंगनाओंसे ये खिन्न हो (जंगम-स्थावरमें) दोनों प्रकार से भरमते हैं ॥ १४ ॥

(५४९) मूढ कर्मसे कर्मको मिटा सकते, धीर (पुरुष) अकर्म से कर्मको मिटाते है, लोभमय (वस्तुओं) से पार हो, सन्तोषी बुद्धिमान् (जन) पाप नहीं करते ॥ १५ ॥

(५५०) जो लोकके अतीत, वर्तमान और भविष्यको ठीक तौर से जानते हैं; वे दूसरोंके नेता, स्वयं दूसरों द्वारा न ले जाये जानेवाले, बुद्ध हैं; वे (संसारके) अन्त करने वाले होते हैं ॥ १६ ॥

(५५१) वे (तीर्थंकर) जुगुप्सा करते भूतोंके दुःखके भयसे पाप स्वयं न करते, न कराते, धीर सदा संयत हो नम्र होते हैं । दूसरे मतवाले तो विज्ञप्ति मात्रसे धीर अपनेको कहते हैं ॥ १७ ॥

(५५२) जवान भी प्राणवाले हैं, बूढ़े भी । उन्हें सारे लोकमें अपने समान देखते हैं, इस लोकको महान् जानकर अप्रमादियोंमें ही प्रव्रजित होना चाहिए ॥ १८ ॥

(५५३) जो अपनेसे और पर से भी धर्मको जानकर अपने लिये भी और परके लिये भी हित करनेमें समर्थ होता है; जो सोचकर धर्मका आविष्कार करता है, उसे ज्योतिस्वरूपके पास रहना चाहिए ॥ १९ ॥

(५५४) जो आत्माको जानता है, लोकों और आवागमनको जानता है, जो शाश्वतको, अ-शाश्वतको जानता, एवं जो जन्म-मरण तथा जनोंको (नरकादि) गतिको भी जानता है ॥ २० ॥

(५५५) अधो(लोक)में प्राणियोंके पीड़ा पानेको, आस्रव (चित्तमल) और संवर को जानता है; जो दुःख और निर्जरा को जानता, वही क्रियावादको बतला सकता है ॥ २१ ॥

(५५६) शब्दों और रूपोंमे न आसक्त होते, गन्धों और रसोंमें द्वेष न करते, न जीनेमें न मरणमें आकांक्षा करते, स्वीकृत संयम से रक्षित हो घेरेसे मुक्त होता है । यह मैं कहता हूं ॥ २२ ॥

॥ बारहवां अध्ययन समाप्त ॥

अध्ययन १३

यथार्थ कथना

(५५७) मैं पुरुषके (हितकर)रत्नत्रयके भेदोंको याथातथ्य (ठीक) से बतलाऊँगा, सन्तोंका (आचरण)धर्म है, और असन्तोंका कुशील। शान्ति (मोक्ष)और अशान्ति (बंध)को भी प्रकट करूंगा ॥१॥

(५५८) दिनरात सम्यक् जागरूक तथागतों (तीर्थंकरों)से धर्मको प्राप्त कर उक्त समाधिको न सेवन करते, अपने शास्ता(तीर्थंकर)की ही निन्हव लोग निन्दा करते रहते हैं ॥२॥

(५५९) जो अपनेसे इच्छाके अनुसार व्याख्या करते, वे शुद्ध शासन

का उलटा अर्थ करते हैं, बहुतसे गुणोंके वह भाजन नहीं, वह तो तीर्थंकर के ज्ञान पर सन्देह कर झूठ बोलते हैं ॥३॥

(५६०) जो पूछने पर (गुरुका नाम)छिपाते हैं, वे लेने लायक (मोक्ष)अर्थसे अपनेको वंचित करते हैं। वे असाधु होते अपने को साधु मानते माया (कपट)से युक्त हो अनन्तकालिक घात (नरक)को प्राप्त होंगे ॥४॥

(५६१) जो क्रोधी होता है, दूसरेकी निन्दा करता है, मिटे कलहको फिरसे उखाड़ता है, वह पापकर्मा अंधेकी भाँति दण्ड जैसे मार्गपर जाता अनिश्चयमें पड़ा दुःखित होता है ॥५॥

(५६२) जो झगडालु, अनुचितभाषी है, वह झगडेमें विना पड़े समताको नहीं पाता, पर जो अववाद (उपदेश)के अनुसार चलने वाला, लज्जालु, एकान्त-श्रद्धालु और माया रहित है ॥६॥

(५६३) जो गुरु द्वारा बहुत उपदेशित, शुद्ध जातिसे युक्त सुन्दर सरल आचारसे युक्त होता, वही चतुर, सूक्ष्म ज्ञान वाला (पुरुष) समता प्राप्त और झगडेसे परे होता है ॥७॥

(५६४) जो कि अपनेको ज्ञानी समझकर विना परीक्षा किये वाद करता है, "मैं तपसे युक्त हूं" यह मानता दूसरे जनको सिर्फ मूरतसा देखता है ॥८॥

(५६५) वह एकान्त रूपसे संसारमें भ्रमता है, वह (तीर्थंकरके) मार्गमें मुनिके पद पर नहीं, जो सम्मानके लिये मदान्वित होता, संयम-युक्त होते भी वह परमार्थको नहीं जानता ॥९॥

(५६६) जो ब्राह्मण, या क्षत्रिय, अथवा उग्रपुत्र, या लिच्छवी* वंशज हैं, और (जो)प्रव्रजित हो पर का दिया खाते अभिमानमें पड़कर गोत्रका अभिमान नहीं करता वही सच्चा मुनि है ॥१०॥

---

*वैशाली गणराज्यके लिच्छवी जिनके ज्ञातृवंशमें काश्यप-गोत्रीय वर्धमान महावीर पैदा हुए।

(५६७) उसकी रक्षा जाति और कुल नहीं कर सकते, जिसने ज्ञान और आचरण को नहीं पाला, घरसे निकल गृहस्थके कर्मका सेवन करता, वह मोक्षार्थ संसारका पारग नहीं होता ॥११॥

(५६८) अकिंचन (जीवनवाला)जो भिक्षु गौरव एवं कीर्ति यशकी ओर जाता हैं, इस आजीव को न समझकर वह वार-वार जन्म-मरणमें पड़ता है ॥१२॥

(५६९) जो भिक्षु भाषाका जानकार, सुन्दर बोलने वाला, प्रतिभा-वान् एवं चतुर होता है, गंभीर प्रज्ञ सद्भावना सहित आत्मवाला हो, दूसरे जनोंको प्रज्ञासे तिरस्कृत करता, वह साधु नहीं है ॥१३॥

(५७०) जो प्रज्ञावान् भिक्षु अभिमानी है, वह ऐसे समाधिप्राप्त नहीं होता, अथवा जो लाभ और मदसे अवलिप्त हो दूसरे जनोंको बाल-बुद्धि कह कोसता है ॥१४॥

(५७१) भिक्षुकों चाहिये कि प्रज्ञा, तप, गोत्र, (जाति तथा आजी-विकाके मदको हटाये, वही पण्डित तथा उत्तम पुरुष है ॥१५॥

(५७२) धीर इन मदोंको हटायें, जिनको सुधर्मी नहीं सेवते, वे सारे गोत्रोंसे परे, महर्षि उत्तम (मोक्ष) गतिको प्राप्त होते हैं ॥१६॥

(५७३) उत्तम लेश्या (ध्यान) वाला तथा धर्मका साक्षात्कार किये भिक्षु ग्राम-नगरमें प्रवेश कर, कामना और अकामनाको जानते लोभ-रहित हो अन्न-पान ग्रहण करे ॥१७॥

(५७४) संयममें अरति और असंयममें रतिको हटा, भिक्षु चाहे बहुजन-सहित हो या अकेला विचरनेवाला, मुनिधर्म द्वारा एकान्त संयम को बतलावे। प्राणी तो अकेला ही आवागमन करता है ॥१८॥

(५७५) स्वयं जानकर या सुनकर, प्रजाके हितके लिये धर्मको भाषे, जो निन्दित, तथा बाल-कामनाके प्रयोग हैं, उन्हें सुधीर-धर्मयुक्त नहीं सेवते ॥१९॥

(५७६) अपनी तर्क बुद्धि द्वारा किन्हींके भावों को न जान, अश्रद्धालु थोड़ेसे भी (क्रोध) को प्राप्त हो सकता है, और आयुके कालक्षेप (मृत्यु) या हानिको पा सकता है, इसलिये अभिप्राय जानकर ही दूसरोंको (बातोंका) उपदेश दे ॥२०॥

(५७७) धीर (दूसरोंके) कर्म, रुचि को जाने; फिर उसके स्वभाव-दोषको हटाये। भयंकर रूप-शोभाओंसे लोग नष्ट होते हैं, यह समझ विद्वान् स्थावर-जंगमके हितकी बात उपदेशे ॥२१॥

(५७८) न पूजा चाहे न प्रशंसा, किसीका भी प्रिय-अप्रिय न करे। सारे अनर्थोंको छोड़कर, व्याकुलता और मदसे रहित होये ॥२२॥

(५७९) यथातथ्य (यथार्थ) को ठीकसे देखते, सभी प्राणियोंमें हिंसाके भावको छोड, (मुनि) न जीनेकी न मरने की कामना करते. माया से मुक्त हो प्रव्रज्या ले। यह मैं कहता हूं ॥२३॥

तेरहवाँ अध्ययन समाप्त

अध्ययन १४

ग्रन्थ_परिग्रह

(५८०) (परिग्रह रूपी) गांठको छोड़, तत्पर हो ब्रह्मचर्य वास करे, अववाद उपदेश)कारी हो विनयका अभ्यास करे। जो छेक(चतुर) है, वह प्रमाद नहीं करता ॥१॥

(५८१) जैसे चिड़ियाका बच्चा विना पंख जमे अपने घोंसले से उड़नेकी कामना कर उसे पूरा नहीं कर सकता; उसी तरह बेपंख, चलनेमें असमर्थ (शावक) को चील्ह आदि हर ले जाते हैं ॥२॥

(५८२) इसी प्रकार अ-पुष्ट धर्मवाले बाहर घूमने को हाथमें करने योग्य समझ, (दूसरे) अनेक पाप धर्म वाले विना पांखके पक्षीके शावककी भांति हर ले जाते हैं ॥३॥

(५८३) मनुष्य "विना ब्रह्मचर्यमें वसे वह अन्त करनेकी चीज नहीं है" यह समझकर वहां वास और समाधिकी इच्छा करे। मोक्षानुरूपी आचरण-सेवन करते आशुवुद्धि पुरुष (गच्छसे) वाहर न निकले ॥४॥

(५८४) जो स्थान और शयन-आसनसे एवं पराक्रमसे सुन्दर साधुओं-से युक्त होता है, वह समिति-गुप्तिके संयममें ज्ञानसहित हो व्याख्या करते दूसरोंको भी (धर्म) वतला सकता है ॥५॥

(५८५) भयंकर शब्दोंको सुनकर उनके विपयमें मनमें मैल न आने दे (कर) विचरे, भिक्षु जैसे भी (गुरुसे पूछ) सन्देहहीन होवे, न निद्रा न प्रमादका सेवन करे ॥६॥

(५८६) तरुण या वृद्ध, अधिक या समवयस्क द्वारा उपदिष्ट होते हुए भी (भिक्षु) अच्छी तरह स्थिरता नहीं प्राप्त करता, और (पार) ले जाता हुआ भी पार नहीं जा सकता ॥७॥

(५८७) साधु कुपित न होये, चाहे दूसरे मतवाले, सिद्धोंकी अव-हेलनाके वारेमें टोकें, तरुण या वृद्ध ताना दें, मुँहफट पनभरनी दासी गृहस्थों के भी अनुरूप न होनेकी वात करके ताना मारे ॥८॥

(५८८) तो न उनपर कुपित हो, न दुःखी हो, न वचनसे कुछ भी कटु वोले, "ऐसा ही आगेसे करूंगा" यह प्रतिज्ञा करे। "उससे मेरा भला है," इसलिये प्रमाद न करे ॥९॥

(५८९) वनमें जैसे मूढ, विभ्रान्तको अमूढ प्रजाओंके हितार्थ मार्ग-निर्देश करते हैं, इससे मेरे लिये ही अच्छा है, मुझे वृद्ध अनुशासन करें ॥१०॥

(५९०) तो उस मूढको अ-मूढकी विशेप-युक्त पूजा करनी चाहिये। वीर (भगवान्) ने यह उपमा कही, अर्थको समझकर (साधु) ठीक से उस पर चले ॥११॥

(५९१) जैसे नेता रातके अंधकारमें न सूझनेसे मार्गको नहीं जानता, वह सूर्यके उगने पर, प्रकाशित होनेपर मार्गको जानता है ॥१२॥

(५९२) ऐसे ही धर्ममें अपरिपक्व शिष्य न बूझते हुये धर्मको नहीं जानता (पर) वह जिन-प्रवचनमें पण्डित हो पीछे सूर्योदयमें आंखकी नाई देखता है ॥१३॥

(५९३) नीचे, ऊपर और तिरछी दिशाओंमें जो स्थावर-त्रस प्राणी हैं, द्वेष से जरा भी न कंपित हो उनपर सदा संयत रह विहार करे ॥१४॥

(५९४) प्रजाओंके सम्बन्धमें सब बातें यथावसर परमार्थ को जानने-वाले आचार्यसे विनय पूर्वक पूछे, उसे सुनकर समझकर "यह केवली संबंधी ज्ञानसमाधि है" जान हृदयमें स्थापित करे ॥१५॥

(५९५) उस पर (मन-वचन-कायासे) अच्छी तरह स्थित हो, तायी (भगवान्) ने इनमें शान्ति और दुःख-निरोधके होने की बात कही है। यही त्रिलोकदर्शी बतलाते हैं, अतः इस प्रमादका संग फिर कभी नहीं करना है ॥१६॥

५९६) वह भिक्षु अपेक्षित परमार्थको सुनकर प्रतिभावान् और विशारद होता है, (परम) लाभका इच्छुक व्यवदान (ज्ञान) और मुनि पदको पाकर शुद्ध-एपणीय (आहार) से मोक्षको पाता है ॥१७॥

(५९७) जानकर धर्मका व्याकरण (उपदेश) करते हैं, वे बुद्ध (संसारके) अन्त-कर होते हैं। वे (अपने और दूसरे) दोनोंकी मोचनासे (संसार) पारंगत, पूछे प्रश्नका उत्तर देते हैं ॥१८॥

(५९८) न (अर्थको) छिपाये, न (अयुक्त) व्याख्या करे, न अभिमान या (अपनी) ख्यातिकी चर्चा करे। प्राज्ञको परिहास भी न करना चाहिये, न आशिर्वादका व्याकरण (उपदेश) ॥१९॥

(५९९) प्राणियोंके अहितके भयसे जुगुप्सा करते आशीर्वाद न दे, न मन्त्रवाक्य से संयमको निष्फल करे। मनुष्य प्रजाओंमें कोई चीज न चाहे, न अ-साधुओंके धर्मका उपदेश करे ॥२०॥

(६००) पापधर्मियोंका परिहास भी न करे, और तथ्य-युक्त भी परुष वचन न बोले। अव्याकुल और संवर युक्त भिक्षु न क्षुद्र बने न डींग मारे ॥२१॥

(६०१) जिन वचनमें संदेह-रहित हो (भिक्षु) सजग रहे और विभज्यवाद-अनेकान्तवाद का व्याकरण (व्याख्यान) करे। समताके साथ सुप्रज्ञ (मुनि), धर्मोत्थान-सहित सत्य तथा असत्य दोनों प्रकारकी भाषाओं के बीच व्यवहारभाषामें समानभावसे उपदेश करे ॥२२॥

(६०२) (दोनों भाषाओंका) अनुगमन करते व्यर्थ को जाने। वैसे-वैसे साधु अ-कर्कश बोले। चुभने वाली भाषा, दुःखनेवालीभाषा न बोले। जल्दी समाप्त होनेवाली बातको न बढाये ॥२३॥

(६०३) अच्छी तरह सुन अर्थको ठीक से जानकर पूरी समझाने वाली भाषा बोले। भिक्षु जिज्ञासा से शुद्धवचनका प्रयोग करे, तथा पापका विवेक करते निरवद्य बोले ॥२४॥

(६०४) (तीर्थकरने) जैसा कहा, वैसा भलीभाँति सीखे, यत्न-विवेक करे, मर्याद के बाहर न बोले। वह दृष्टियुक्त (हो) दृष्टिको बिगाड न कहे, तब वह समाधि को बतला सकता है ॥२५॥

(६०५) अर्थको न बिगाड़, न छिपाके बात करे, और तायी सूत्र और अर्थको व्यवहार विरुद्ध न कहे, शास्ता (उपदेष्टा) की भक्तिके साथ वादको सोचकर, श्रुतको ठीकसे प्रतिपादन करे ॥२६॥

(६०६) वह जो शुद्ध सूत्र बोलनेवाला और उपधान (उचित-तप) युक्त रहे, जो तहां-तहां धर्मको प्राप्त करता वाक्य-ग्राही, कुशल और व्यक्त है, वह उस भावसमाधिको बतला सकता है। यह मैं कहता हूँ ॥२७॥

॥ चौदहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

अध्ययन १५

(आदान-परमार्थ)

(६०७) जो अतीत, वर्तमान और आनेवाला है, (उन) सबको दर्शनके आवरणको हटानेवाले नायक, तायी (भगवान्) जानते हैं ॥१॥

(६०८) विलक्षण पदार्थके जानने वाले संदेहके नाशक (भगवान्) हैं, ऐसे विलक्षण(पदार्थ) के बतानेवाले जहां-तहां नहीं होते ॥२॥

(६०९) वहां-वहां (भगवान्ने) सु-व्याख्यान किया, वह (व्याख्यान) सचमुच ही सु-आख्यात है। सदा सत्यसे युक्त हो प्राणियोंमें मैत्री करनी चाहिये ॥३॥

(६१०) धर्म (ब्रह्मचर्य) में वास करनेवाले साधुका धर्म है कि भूतों (=प्राणियों) की हानि न करे। वह जगत्को समझकर, (उसके प्रति) जीवटवाली भावना करे ॥४॥

(६११) भावना (रूपी) योग से शुद्ध किये आत्मा वाला, जलमें नाव जैसा बतलाया गया है; तीर पर पहुंची नावकी तरह वह सारे दुःखोंसे मुक्त हो जाता है ॥५॥

(६१२) बुद्धिमान् लोकमें पापको जान (बन्धन-) मुक्त होता है, नये कर्मको न करनेसे (वह) पाप कर्मोंको तोड़ता है ॥६॥

(६१३) न करनेसे नया (कर्म) नहीं पास आता। जानकर इसके कारण वह महावीर न जनमता न मरता। (आवागमन रहित) है ॥७॥

(६१४) जिसका पहलेका किया (कर्म) नहीं है, वह महावीर नहीं (जनमता-)मरता। जैसे वायु आग को, वैसे ही वह लोकमें प्रिय लगने वाली स्त्रियोंसे (पार हो जाता है) ॥८॥

(६१५) जो स्त्रियोंका सेवन नहीं करते, वे आदिमें ही मोक्ष पाये जन हैं। वे जन बंधनसे मुक्त हो जीवनका लोभ नहीं करते ॥९॥

(६१६) जीवनको पीछे छोड़ कर्मोंका अन्त पा लेते हैं, वे (शुभ अध्यवसाय वाले) कर्मों द्वारा (मोक्षका) साक्षात्कार किये हैं, जो मार्गका उपदेश करते हैं ॥१०॥

(६१७) प्राणियोंको (उनके) अधिकारके अनुसार अलग अनुशासन (=उपदेश) किया जाता है, क्योंकि (संयम धनसे सम्पन्न, देवादि से पूजित) आशय रहित, संयमी, दान्त, दृढ़, तथा मैथुनसे विरत रहता है ॥११॥

(६१८) (विषय रूपी) धारको तोड़ और निर्दोष (शिकारीके फेंके चारे में) लिप्त नहीं होता, सदा निर्दोष और दान्त रहते अनुपम (भाव-) सन्धिको पाता है ॥१२॥

(६१९) अनुपम (मुनिधर्मके पालनमें) किसीके तत्वज्ञका विरोध नहीं होता, वह नेत्रोंवाला मन, वचन, काय द्वारा (किसीसे भी विरुद्ध नहीं) ॥१३॥

(६२०) जो इच्छाओंका नाशक है, वह मनुष्योंकी आँख सा है, अपने अन्त (धार) से छोर काटता है, चक्का भी अन्त (छोर) से ही लुढकता बढ़ता है ॥१४॥

(६२१) धीर पुरुष अन्तका सेवन करते हैं, इसलिये (संसारके) अन्त करनेवाले होते हैं। आदमी इस मानुषलोकमें धर्मको आराधन करते (आवागमनका) अन्त करते हैं ॥१५॥

(६२२) उत्तर (प्रधान-जिन प्रवचन में) मैंने यह सुना, कि अर्थ समाप्त किये (पुरुष) या देवता (सिद्धि प्राप्त करते हैं)। अनन्त (तीर्थ-करों की परम्परा) से यह भी सुना, कि अमनुष्यों (देवताओं) में वैसी वात (निर्वाण) नहीं होती ॥१६॥

(६२३) समग्र गणधरोंने (आर्हत कथनानुसार) कहा है, कि

(केवल मनुष्य) दुःखोंका अन्त कर सकता है, फिर दूसरोंने कहा, कि यह मानव (-शरीर) दुर्लभ है ॥१७॥

(६२४) यहां (मनुष्यत्व) से च्युत होने पर संबोधि (परम ज्ञान) मिलनी दुर्लभ है। वैसे आचार्य भी दुर्लभ हैं, जो धर्मके अर्थका व्याकरण (व्याख्यान) करते ॥१८॥

(६२५) जो (आचार्य) परिपूर्ण, अनुपम, शुद्ध, धर्मको बतलाते हैं, जो अनुपम स्थान प्राप्त हैं, उनके फिर जन्म लेनेकी बात कहां ?।१९॥

(६२६) कहीं और कभी ही मेधावी तथागत (=तीर्थंकर-अर्हत्) पैदा होते हैं, वे (निदान-कामना हीन) तथागत (सम्यग्दृष्टि) लोकके अनुपम चक्षु हैं ॥२०॥

(६२७) वह अनुपम स्थान है, जिसे (भगवान्) काश्यप(महावीर) ने जाना। जिसका (आचरण) कर कितने ही पण्डित निर्वाण प्राप्त हो (जीवनके) अन्त को पाते हैं ॥२१॥

(६२८) पण्डित वीर्य से कर्मों के नाशके लिये प्रवृत्त होता है। वह पहलेके कर्मों को ध्वस्त करता, नयेको नहीं करता ॥२२॥

(६२९) परम्परासे किये गये पापको महावीर नहीं करता। वासनाके कारण सामने आये (आठ प्रकारके) कर्मों को छोड़ (मोक्ष) का साक्षात्कार करता है ॥२३॥

(६३०) सारे साधुओंका जो मत है, वह मत (भव रूपी) शल्य काटनेवाला है, उसे साधकर पुरुष पारंगत (=जिन) होते या देवता बनते ॥२४॥

(६३१) पहले भी धीर (वीर) हुये, आगे भी वैसे सुव्रत पैदा होंगे, जो स्वयं पारंगत (भव-उत्तीर्ण) हों वे दूसरोंकेलिये दुर्गम मार्गका प्रादुर्भाव करते हैं। यह मैं कहता हूं ॥२५॥

॥ पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त ॥

——

द्वितीय श्रुतस्कन्ध

अध्ययन १

पुण्डरीक

(६३६) (सुधर्मा स्वामी, जम्बूस्वामीसे कहते हैं :) आवुसो ! उन भगवान् (काश्यप) ने ऐसे कहा—यह है पुण्डरीक नामक अध्ययन। उसका यह अर्थ है : जैसे पुष्करिणी हो, वहुत जल वाली, वहुत पंक वाली, वहुत कमलोंवाली, यथार्थनामा, पुण्डरीक(श्वेत कमलों)वाली प्रासादिका (स्वच्छ) = दर्शनीय, सुन्दर, मनोहर। उस पुष्करिणी के स्थान-स्थानमें जहां-तहां वहुतसे परमश्रेष्ठ पुण्डरीक आदि हों। जो, क्रमशः ऊंचे, रुचिर, सुन्दर-वर्ण युक्त, सुगन्ध-युक्त, रस-युक्त, स्पर्श-युक्त, प्रासादिक, अभिरूप, प्रतिरूप हों। उस पुष्करिणी के अत्यन्त मध्यदेशमें एक महान् परम श्रेष्ठ पुण्डरीक ऊंचा, रुचिर सुन्दर, वर्ण युक्त*···प्रतिरूप हो। उस सारी पुष्करिणी में वहां स्थान-स्थान में जहां-तहां वहुतसे पद्मवर पुण्डरीक···प्रतिरूप हों। उस सारी पुष्करिणीके अत्यन्त मध्यदेशमें एक महान् पद्मपुण्डरीक ऊंचा रुचिर···प्रतिरूप हो।.१॥

(६३७) तब पुरुष पूर्वदिशासे आकर उस पुष्करिणी तीर के पर खड़ा हो देखे···एक वड़े पद्मवर पुण्डरीकको ऊंचा, रुचिर···प्रतिरूप। तब वह पुरुष ऐसा कहे···"मैं परिश्रमी, कुशल, पण्डित-व्यक्त-मेधावी, वालभाव-रहित, मार्ग में स्थित, मार्गका ज्ञाता, मार्गकी गति और परा-

---

* विंदीवाली जगहोंमें पहलेका पाठ दुहराओ।

क्रमका ज्ञाता पुरुष हूं। मैं इस पद्मवर पुण्डरीकको निकालूंगा,'' यह सोच, वह पुरुष उस पुष्करिणीमें घुसता है.। जैसे जैसे भीतर घुसता, वैसे-वैसे बड़ा जल, बड़ी पंक मिलती है। तीरसे दूर (जा) और पद्मवर पुण्डरीकको (भी) न पा, न इधर का न उधरका, पुष्करिणीके भीतर पंकमें फँस जाता है। यह है पहला पुरुष ॥२॥

(६३८)अब दूसरा पुरुष। तब एक पुरुष दक्षिण दिशासे आकर उस पुष्करिणी पर आकर, उस पुष्करिणीके किनारे खडा हो उस एक पद्मवर पुण्डरीकको ऊंचा, रुचिर,*…प्रतिरूप। और वहीं एक पुरुषको देखा, बुरी हालतमें पद्मवर पुण्डरीकको न पा, न इधर का न उधर का पुष्करिणीके भीतर पंकमें फँसा।

' तब यह पुरुष उस पुरुषके बारेमें कहे "अहो, यह पुरुष अ परिश्रमी, अ-कुशल, न पराक्रमका ज्ञाता है। जो कि यह पुरुष ऐसे फँस गया। मैं हूं परिश्रमी ० पराक्रमज्ञ पुरुष। मैं इस पद्मवर पुण्डरीकको निकालूंगा।" यह सोच वह पुरुष उस पुष्करिणीमें घुसे। जैसे-जैसे भीतर घुसे, वैसे-वैसे बडा जल बडी पंक मिलती है। तीरसे दूर जा, और पद्मवर पुण्डरीकको न पा, न इधर का न उधर का, पुष्करिणीके भीतर पंकमें फँस जाता है। यह है दूसरा पुरुष ॥३॥

(६३९) अब यह तीसरा पुरुष पश्चिम दिशा से आकर उस पुष्करिणीके किनारे खडा हो उस एक पद्मवर पुण्डरीकको देखता है। वहां दो पुरुषोंको देखता है…पुष्करिणी के भीतर पंकमें फँसा।

तब वह पुरुष उन दोनों पुरुषोंके बारे में कहता है—अहो, ये दोनों पुरुष अ-परिश्रमी ० न पराक्रमके ज्ञाता हैं। मैं उस पद्मवर पुण्डरीकको

* दुहराओ ६३६।

निकालूंगा। यह सोच पुरुष उस पुष्करिणीमें घुसता है‡...पुष्करिणीके भीतर पंकमें फँस जाता है। यह है तीसरा पुरुष ॥४॥

(६४०) अब चौथरा पुरुष। तब पुरुष उत्तर दिशासे आकर, उस पुष्किरिणीके किनारे खड़ा हो, उस एक पद्मवर पुण्डरीक को • देखता है। वहां तीन पुरुषोंको देखता है पुष्करिणीके भीतर पंकमें फँसा।

तब वह पुरुष उन तीनों पुरुषोंके बारेमें कहता है—अहो, ये तीनों पुरुष अ-परिश्रमी, न पराक्रमके ज्ञाता हैं। मैं इस पद्मवर पुंडरीकको निकालूंगा। यह सोच, वह पुरुष उस पुष्करिणीमें घुसता है, पुष्करिणीके पंकमें फँस जाता है। यह है चौथा पुरुष ॥५॥

(६४१) तब परिश्रमी, गति पराक्रमका ज्ञाता, रूक्ष(राग-द्वेष रहित) भिक्षु उस पुष्करिणीके तीर पर खडा हो देखता है, उस एक पद्मवर पुण्डरीकको.. । तब वह भिक्षु उन चारोंको देखता है, पुष्करिणीके भीतर पंकमें फँसा। तब वह भिक्षु ऐसे कहता है—अहो, ये चार पुरुष अ-परिश्रमी*...न पराक्रमके ज्ञाता हैं। मैं उस पद्मवर पुण्डरीकको निकालूंगा। यह सोच वह भिक्षु उस पुष्करिणीमें नहीं घुसता। उस पुष्करिणीके तीरपर खड़ा हो आवाज देता है—"हे पद्मवर पुण्डरीक, निकलो, निकलो"। तब वह पद्मवर पुण्डरीक निकल आता है ॥६॥

(६४२) हे आवुसो श्रमणो, उदाहरण कह दिया। अब इसका अर्थ जानना है। श्रमण भगवान् महावीरको निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थिनियां "भन्ते" कह वन्दना करते, नमस्कार करते। वन्दना और नमस्कार करके यह कहते...उदाहरण सुना है आवुसो! श्रमणो, पर अर्थ इसका नहीं जानते।

श्रमण भगवान् महावीरने उन बहुतसे निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों-को आमन्त्रित कर यह कहा—हंत, तो आवुसो श्रमणो; हेतु-सहित निमित्त

---

‡ दुहराओ ६३६।

सहित अर्थको मैं कहता हूं, समझाता हूं, कीर्तन करता हूँ, जतलाता हूं, पुनः-पुनः दिखलाता हूं, उसे बोलता हूं ॥७॥

(६४३) आवुसो श्रमणो, मैंने लोककी कल्पनासे पुष्करिणी कहा। कर्मको आवुसो श्रमणो, कल्पना से जल कहा। कामभोगोंको आवुसो श्रमणो, मैंने पंक कहा। जनों और जनपदोंको आवुसो श्रमणो, मैंने कल्पनासे बहुतसे पद्मवर पुण्डरीक कहे। राजाको मैंने आवुसो श्रमणो, एक महा पद्मवर पुण्डरीक कहा। अन्य तीर्थिकों (परमतवादियों) को आवुसो श्रमणो, चार पुरुष कहे। धर्मको मैंने आवुसो श्रमणो, भिक्षु कहा। धर्म-रूपी तीर्थ और धर्मकथाको मैंने आवुसो श्रमणो, कल्पनासे आवाज देना कहा। निवार्णको मैंने आवुसो श्रमणो, कमलका बाहर निकलना कहा। इस प्रकार मैंने आवुसो श्रमणो, कल्पनासे इसे कहा ॥८॥

भौतिकवाद—

यहां लोकमें पूर्वमें, पश्चिममें, उत्तरमें, दक्षिणमें कितने ही मनुष्य आनुपूर्वीसे (क्रमशः) उत्पन्न होते हैं। जैसे कि कोई आर्य हैं, कोई अन्-आर्य, कोई ऊंचे गोत्रके कोई नीचे गोत्रके। कोई कद्दावर और कोई नाटे। कोई सुवर्ण (गोरे), कोई दुर्वर्ण (काले), कोई सुरूप कोई कुरूप। उन मनुष्योंमें कोई राजा होता है, जिसके पास महाहिमालय गिरि, मलय, मंदर और महेन्द्रका सार (धन) होता है। वह अत्यन्त विशुद्ध राज-कुल-वंशमें उत्पन्न होता है। उसके अंगमें राजाके लक्षण निरन्तर विराजित होते हैं। वह बहुजनों (=जनता) में बहुमानित और पूजित होता है। वह सब गुणोंसे युक्त, अभिषेक-प्राप्त क्षत्रिय, माता और पिता दोनों ओर से सुजात, मर्यादाकारी, कल्याणकारी, कल्याणधारी होता है। वह मनुष्येन्द्र जनपद-देशका पिता, जनपदका पुरोहित (प्रधान) केतुधारी होता है। वह नर प्रवर, पुरुषप्रवर, पुरुषसिंह, पुरुष-सर्पराज, पुरुषवर-पुण्डरीक, पुरुष गंध-(मत्त), गज, आढ्य, दीप्त, विख्यात होता है। वह चारों ओर फैले विपुल

भवन-शयनासन, यानों और वाहनोंसे आकीर्ण होता है। उसके पास बहुतसा धन और सोना-चाँदी होता है, (वह) आय-व्यय से युक्त होता है। उसके द्वारा प्रचुर खान-पान-दान दिया जाता है। उसके यहाँ बहुतसे दास-दासियां-गाय-बैल-भैंस-बकरियां होती हैं। भरे हुये कोश, कोठार, हथियारखाने होते हैं। वह स्वयं बलवान् होता है, उसके दुश्मन दुर्बल। उसका राज्य अवहतकंटक-निहतकण्टक-मर्दितकण्टक-उद्धृतकण्टक-अकंटक होता है। वह स्वयं अवहतशत्रु-निहतशत्रु-मर्दितशत्रु-उद्धृतशत्रु-निर्जित-शत्रु-पराजितशत्रु होता है। उसका राज्य दुर्भिक्ष-विरहित, महामारीके भयसे प्रमुक्त होता है। उसके राज्यकी प्रशंसा वैसी ही है, जैसी औप-पातिक (=देवता) के सूत्र* में बतलाया गया है। आन्तरिक और बाह्य गड़बडियोंसे शान्त राज्य-साधित करता वह विहार करता है।

उस राजा की परिषद् होती है। उसकी सेवामें होते हैं—उग्र (भट), उग्रपुत्र, भोग (राजपाल) और भोगपुत्र, ईक्ष्वाकु-क्षत्रिय और (कौरव्य) और कौरव्य-पुत्र, भट्ट और भट्ट-पुत्र, ब्राह्मण और ब्राह्मण-ज्ञातृपुत्र, कुरुदेशी क्षत्रिय पुत्र, लिच्छवी और लिच्छवी-पुत्र, प्रशासनकर्ता और प्रशासनकर्ता के पुत्र, सेनापति और सेनापति-पुत्र। उन (राजाओं) में कोई-कोई श्रद्धालु होता है। स्वेच्छापूर्वक उसके पास श्रमण,-ब्राह्मण जानेका विचार करते हैं। (वह) धर्मका प्रज्ञापन करते हैं, "हम इस धर्मके माननेवाले हैं। हम इस धर्मको सिखलायेंगे।" वह जा कर कहते हैं—"हे भयत्राता राजन्! मैंने यह सु-आख्यात धर्म प्रज्ञापित किया है उसे जानो—पैर के तलवेसे ऊपर केशाग्र-मस्तकसे नीचे तिरछे चमड़े तक आत्मा कहा जानेवाला सारा जीव है। उस आत्माके जीवित रहने पर शरीर जीता है, वह मर जाये तो नहीं जीता। शरीरके विनष्ट हो जानेसे विनष्ट हो जाता है। इसके अन्त होने तक जीवन रहता है। फिर दूसरे (लोग मरे को) जलानेकेलिये ले जाते हैं। आगमें जला देने पर

* (अणुत्तरोववाइअदसाओ-अनुत्तरौपपातिकदशांग, (९वां अंग)

हड्डियाँ कबूतरके रंगकी हो रह जाती हैं। अरथी (चारपाई) को पांचवीं बना अरथी-वाहक चारों पुरुष गाँवमें लौटते हैं। इस प्रकार न-रहता न-विद्यमान जीव जिनके लिये है, वह नहीं रहता न-विद्यमान ही रहता है, उनका यह वाद (धर्म सिद्धान्त) सु-आख्यात होता है।

जिन के मतमें जीव दूसरा है, शरीर दूसरा। वह हमें इस प्रकार पूछते हैं—आवुसो, यह आत्मा दीर्घ है या ह्रस्व, गोल है या लंबोतरा तिकोना है या चौकोना, या छकोना या अठकोना। काला है या नीला, लाल है या सफेद। सुगंधित है या बदबूदार। तिक्त है या कडवा, या कषाय, या खट्टा या मीठा। कर्कश है या कोमल। भारी है या हल्का। ठंडा है या गर्म। चिकना है या रूखा। इस प्रकार जिनके मतमें असत अविद्यमान् आत्मा है, उनका वाद सु-आख्यात होता है।

जिनके मतमें शरीर भिन्न है जीव भिन्न। वह ऐसा नहीं (दिखा, पाते। उदाहरणके तौर पर, जैसे—कोई पुरुष म्यानसे तलवारको निकालकर दिखलाये—"आवुसो, यह तलवार है यह म्यान। (पर ऐसा) कोई पुरुष नहीं है, जो आत्माको निकालकर दिखलाये," आवुसो, यह मूंज और यह है इषु। इसी तरह कोई यह दिखलानेवाला पुरुष नहीं है: "आवुसो, यह आत्मा है, यह शरीर।" जैसे कि, कोई पुरुष मांससे हड्डी को निकालकर दिखलाये: "आवुसो यह मांस है यह अस्थि।" इसी तरह कोई दिखलानेवाला पुरुष नही है, "आवुसो, यह आत्मा है, यह शरीर है।"

जैसे कि, कोई पुरुष हथेलीसे आंवला निकालकर दिखलाये: "आवुसो, यह है हथेली और यह आंवला।" इस तरह दिखलानेवाला कोई पुरुष नहीं है: "आवुसो, यह आत्मा है, यह शरीर।"

जैसे कि, कोई पुरुष दहीसे मक्खनको निकालकर दिखला दे: "आवुसो, यह है दही और यह नवनीत।" ०।

जैसे, कोई पुरुष तिलोंसे तेल निकाल कर दिखलाये: "आवुसो, यह तेल है, यह खली।" इसी तरह ०।

जैसे कि, पुरुष ईखसे रसको निकालकर दिखला दे : आवुस, यह है रस और यह खोई।" इसी तरह ०।

जैसे कि, कोई-कोई पुरुप अरणिसे आग निकालकर दिखलादे : "आवुस, यह है अरणि और यह है अग्नि।" इसी तरह ० इनके मतमें आत्मा असत्, अविद्यमान है, वह उनका स्वाख्यात धर्म है।

जीव अन्य है, शरीर अन्य है सो मिथ्या है। (चाहे) घातक उस शरीरको मारे, काटे, जलाये, पकाये, आलोप-विलोप करे, लूटे, वलात्कार करे, (तो) कुछ नहीं। इतना (शरीर) भर ही जीव है। मरनेके बाद परलोक नहीं है। वह यह शिक्षा नहीं देते : क्रिया (कर्म) है, अ-कर्म है, सुकृत(पुण्य) है, दुष्कृत (पाप) है, कल्याण कर्म है, पाप कर्म है, अच्छा है, बुरा है, सिद्धि (मुक्ति) है, असिद्धि(संसार भ्रमण) है, नरक है, अनरक है। इस प्रकार वे (भौतिकवादी) नाना प्रकार के कर्मोंको करके अपने भोगके लिये नाना प्रकारका अनुष्ठान करते हैं।

इस प्रकार कोई-कोई ढीठ प्रव्रजित होनेकेलिये घरसे निकलकर "यह मेरा धर्म है," प्रज्ञापित करते हैं ०। उस पर श्रद्धा करते उनके पास जाते हैं। उनसे कहते हैं : "वहुत अच्छा स्वाख्यात है, हे श्रमण हे ब्राह्मण, मैं आवुस, मनसे तुम्हारी पूजा करता हूं। खाने-पीने से, स्वादनीय से, वस्त्रसे, परिग्रहसे, कंवलसे, पादपोंछने से" वहां कोई (उपासक) पूजामें तत्पर होते, कोई पूजामें लगते। उन्होंने पहले प्रतिज्ञा ली हुई होती है : "हम श्रमण होंगे' विना घरके, अकिंचन, पुत्र-रहित, पशु-रहित, परदत्तभोजी, भिक्षु (होंगे)। हम पाप कर्म नहीं करेंगे। प्रतिज्ञापर आरूढ होकर भी स्वयं (उनसे) विरत नहीं होते। स्वयं निपिद्धको लेते हैं, दूसरोंको भी दिलवाते हैं, दूसरोंको लेनेकी अनुज्ञा देते हैं। इसी प्रकार वे स्त्री के कामभोग में लिप्त हो, लुव्ध, गुंथे, आसक्त, लोभित, राग-द्वेप के वशंगत (हो) न वे अपने को मुक्त करते, न दूसरेको। वे दूसरे प्राणियों-भूतों-जीवों-स्वत्वों को मुक्त नहीं

कराते। पहलेके संसर्गको छोड़े, (वे) आर्यमार्गको न पाये हैं। इस प्रकार वे न इस लोकके हैं न परलोकके हैं, कामभोगोंमें फँसे हैं।

यह जीव-शरीरको एक माननेवाले पुरुषकी बात बतलाई गई ॥९॥

पंच भौतिकवाद—

(६४४) तब दूसरा जो पंचमहाभौतिकवादी (करके) प्रसिद्ध है। (वह कहता है–) यहां पूर्व दिशामें एक तरहके आदमी होते ० क्रमशः लोकमें उत्पन्न होते हैं। जैसे कि ० * एक महान् राजा ० उसमें कोई-कोई श्रद्धावान् होता है।'' सो ऐसा जानो'''यहां पांच महाभूत हैं। उनसे न क्रिया (पुण्यकर्म) बनती, न अक्रिया ''। अन्ततः तृणमात्र भी नहीं (बनता)। उन भूतोंके समूहको अलग-नामोंसे जानें। जैसे कि पृथिवी एक महाभूत है, जल दूसरा महाभूत, तेज तीसरा महाभूत, वायु चौथा महाभूत, आकाश पांचवां महाभूत।

ये पांचों महाभूत न निर्मित न निर्मापित हैं, अकृत, न-कृत्रिम, न-अकृत्रिम हैं। अनादिक, नाशहीन, अवंध्य नहीं, पुरोहित हीन*० । इस-प्रकार वे अनार्य ० न इस लोकके न परलोक के हैं। काम भोगके वश में फँसे हैं।

यह पंच महाभौतिकवादी दूसरे पुरुष कहे जाते हैं ॥१०॥

ईश्वरवाद—

(६४५) अब तीसरा पुरुष है, जो ईश्वर-कारणिक कहा जाता है। (वह कहता है)—यहां पूर्वमें एक तरहके मनुष्य* उत्पन्न होते हैं।०।—मैंने यह धर्म सु-आख्यात और सुप्रज्ञापित किया है—जगत्में सारे धर्म (वस्तुयें) ऐसी हैं, जिनकी आदिमें पुरुष(ईश्वर) था, बाद में पुरुष था। वह पुरुष द्वारा निर्मित पुरुषसे उत्पन्न, पुरुषसे द्योतित, पुरुपसे युक्त, पुरुषको ही आधार बनाके रहती हैं। जैसे कि, फोडा शरीरमें पैदा हुआ हो, शरीरमें बढा, शरीरसे युक्त, शरीरको ही आधार बनाके रहता है।

---

* देखो ६४४।

जैसे कि अरति (अरुचि) शरीरमें पैदा हुई हो, ० शरीरको आधार बनाके रहती है। इसी प्रकार धर्म (वस्तुयें) भी पुरुष द्वारा निर्मित ० पुरुषको आधार बनाके रहते हैं।

जैसे कि, वल्मीक (दीमकका ढूई-दडवा) पृथिवीमें पैदा हुआ ० पृथिवीको ही आधार बनाके रहता है। ऐसे ही धर्म भी पुरुष ० को आधार बनाके रहता है।

जैसे कि, वृक्ष पृथिवीको ०। जैसे कि, पुष्करिणी ०। जैसे कि जलका बुलबुला जल को ० -

जो भी निर्ग्रन्थ श्रमणोंका कहा गया उत्तम और स्पष्ट-कृत बारह अंगोंवाला गणिपिटक है, जैसे—१ आचार, २ सूत्रकृत, ३ स्थान, ४ समवाय, ५ भगवती, ६ ज्ञाताधर्म, ७ उपासकदशा, ८ अन्तकृद्दशा, ९ अनुत्तरोपपातिक, १० प्रश्नव्याकरण, ११ विपाक और १२ दृष्टिवाद। "यह सब मिथ्या है। यह तथ्य नहीं, यह यथातथ्य नहीं, हम जो ईश्वरवाद बतलाते हैं, वह सत्य है, वह तथ्य है," वह ऐसा ज्ञान स्थापित करते, उपस्थित करते हैं। इस प्रकार वे उस प्रकारके दुःखको नहीं काटते, जैसे पक्षी पिंजडेको नहीं काट सकता। वे (निर्ग्रन्थ) हमें यह बतलाते हैं, कि क्रिया ० (६४४ देखो)। ऐसे ही वे नाना प्रकारके कर्मोंको करके अपने भोगके लिये नाना प्रकारके अनुष्ठान करते हैं। इसी प्रकार वे अनार्य (स्वयं) भ्रममें पड़े ऐसी श्रद्धा करते ० वे न इस लोकके न परलोक के, कामभोगमें फँसे हैं।

यह तीसरा पुरुष ईश्वरकारणिक कहा जाता है ॥११॥

नियतिवाद—

(६४६) तब एक और चौथा पुरुष, जो कि नियतिवादी कहा जाता है। (वह कहता है—) यह पूर्वमें ० सेनापति पुत्र। मैंने यह धर्म ० प्रज्ञापित किया है—यहां दो पुरुष हैं: एक क्रिया(वाद)को प्रतिपादन करता है, दूसरा-न क्रिया को। जो क्रिया प्रतिपादन करता है, और जो नहीं प्रतिपादन करता, दोनों पुरुष बराबर, एक अर्थवाले तथा एक ही

कारणको माननेवाले हैं। मूढ (पुरुष) ऐसा समझता है—मैं कारणको प्राप्त हूँ, दुःखित होता, शोकाकुल होता हूं, निंदता हूं, दुर्बल होता, पीड़ा अनुभव करता या परितप्त होता हूँ। मैंने (स्वयं) ऐसा किया। दूसरा जो दुःखित होता ० परितप्त होता, (सो) दूसरेने ऐसा किया (इसके कारण) इस तरह वह मूढ स्वकारण या परकारणको ऐसा मानता, कारण पर आरूढ है। मेधावी (पुरुष) ऐसा समझता, ऐसे कारण पर आरूढ है—मैं दुःखित हूँ ० परितप्त होता हूँ। ०। इस प्रकार वह मेधावी अपने कारण या परकारणको,कारणरूढ समझता है।: "सो मैं (नियतिवादी) कहता हूँ—"पूर्वमें जो जंगम-स्थावर प्राणी हैं, वे इस तरह (नियति देवके कारण शरीररूपी) संघातको प्राप्त होते हैं। वे इस प्रकार बाल्य आदि विपर्यासको प्राप्त होते हैं। वे इस प्रकार विवेक, विधान, संगतिको उत्प्रेक्षा (कल्पना) से प्राप्त होते हैं। वे वैसा नहीं समझते, जैसे कि, क्रिया आदि ० नरक।

इस प्रकार वे नानाप्रकारके कर्मोंको करके०। इसी प्रकार वे अनार्य ० कामभोग में फँसे हैं। यह चौथा पुरुष नियतिवादिक कहा जाता है। इस तरह ये चार पुरुष भिन्न-भिन्न प्रज्ञा,-भिन्न-भिन्न छन्द=शील ० दृष्टि ० रुचि ० आरम्भ ० निश्चय, ० से युक्त (कुल-परिवार के) पूर्व संभोगको छोडे (भिक्षु) होनेपर आर्यमार्गको न पाये हैं। वे न इधरके न उधर के बीचमें कामभोगोंमे फँसे हैं॥१२॥

विभज्यवाद-(जैनदृष्टि)-

(६४७) सो मैं (सुधर्मा) कहता हूँ।—पूर्वमें एक तरहके मनुष्य ० उत्पन्न होते हैं, जैसे कि अनार्य, कोई उच्च गोत्र,कोई नीचगोत्र ० वह जन जनपद लिये होते हैं, थोडे या घने। वैसे प्रकारके कुलोंमें आकर श्रेय लेकर कोई भिक्षुके लिये उपस्थित होते हैं। कोई-कोई अपने पास मौजूद ज्ञातियोंको उपकरणको छोड़ कर, भिक्षाचर्या स्वीकार करते हैं, कोई न मौजूद ज्ञातियों-उपकरणों को छोड कर ०। भिक्षाचर्या स्वीकार करते हैं। उन्हें पहले से ही ऐसा ज्ञात होता है कि यहाँ (दुनियामें)

पुरुप झूँठ ही दूसरी-दूसरी वस्तुओंको अपनी समझता है, जैसे—खेत मेरा है घर मेरा, सोना मेरा, हिरण्य ०, सुवर्ण ०, धन ०, धान्य ०, कांसा ० घुसा ०, विपुल कनक-रत्न-मणि-मुक्ता-शंख-शिला-मूंगा-लाल रत्न पैतृक संपत्ति मेरी, शब्द मेरे, रूप०, रस०, गन्ध०, स्पर्श०, ये कामभोग मेरे, मैं भी इनका।

वह मेधावी पहले यह स्वयं जाने,—"मुझे कोई दुःख-रोग-आतंक उत्पन्न होये, (वह) जो अनिष्ट=अ-कान्त=अप्रिय=अशुभ=अमनोज्ञ =अमनाप होये। तो मैं दूसरोंसे कहूँ—हे भयत्राता (अन्नदाता), ये दुःख हैं, सुख नहीं हैं।काम भोग (मेरे लिये) दुःख जैसे हैं। रोग और आतंक जैसे (मेरे) इन कामभोगोंको (आप) बाँट लें। ये अनिष्ट० दुःख हैं, सुख नहीं हैं। इसलिये मैं दुःख पा रहा हूं, परितप्त हो रहा हूं। इनमें किसी दुःख अमनापसे छुडावें। पर ऐसे कभी छुटकारा हुआ है ?

यहां काम-भोग न त्राणके लिये हैं न शरणके लिये। पुरुष किसी समय काम-भोगोंको छोड देता है, अथवा किसी समय काम-भोग-पुरुषको छोड देते हैं। बुद्धिमान् को जानना चाहिये—"कामभोग दूसरे हैं, और मैं दूसरा हूँ। तो, जी, क्यों हम परभूत काम-भोगमें होश खो देते हैं।," ऐसा सोच "हम भोगोंको छोडेंगे"। वह मेधावी जाने कि, यह काम-भोग बाहरी हैं। उनसे मेरे लिये यही बेहतर है, जैसे कि, मेरी माता,पिता०, भ्राता०,भगिनी०,भार्या०, पुत्र०,पुत्रियां०, नौकर०, नाती०,बहू०, सुहृद्०, प्रिय०,सखा०, स्वजन०, सगे०, मेरे संबंधी। ये मेरे जातिके हैं, मैं इनका हूं। ऐसे वह मेधावी पहले ही समझे, स्वयं जाने।

यहां मुझे कोई रोग ० आतंक ० उत्पन्न होये, तो मैं कहूं—"हे भयत्राता, ज्ञाति भाइयो, यह मेरा एक दुःख, रोग-आतंक है। इस अनिष्ट अ-सुखको आप बांट लें ०। परितप्त हो रहा हूँ (इनमें से) किसी दुःख ० से छुड़ा दें।" ऐसा छुडानेवाला कभी नहीं मिला देखा गया। मेरे भय-त्राता, ज्ञातिवालोंमें से किसी को दुःख० उत्पन्न हो। (मैं लोचूं-) ओह

इन०के दुःखको मैं बांट लूं । वे न दुःखी होयें, ०, किसी दुःख० से इन्हें छुड़ा दूं ०। पर ऐसा कभी नहीं देखा गया।

दूसरेका दुःख दूसरा नहीं बाँट लेता, दूसरेका किया दूसरा नहीं भोगता। आदमी अलग-अलग जनमता है, अलग मरता है। अलग च्युत होता है, अलग उत्पन्न होता है। अलग ही कर्मरजों(मलों) को, समझको, मनन को प्राप्त होता (करता) है, ऐसे ही अकेला विद्वान्, वेदनावान् भी होता है। ज्ञातियोंका संयोग यहां न त्राणके लिये, न शरणके लिये होता है। पुरुष पहले ही अकेले ज्ञातियोंके संबंधको त्यागता है, या ज्ञातियोंके संयोग पहले पुरुषको छोडते हैं। ज्ञाति-संयोग अलग है, और मैं अलग हूं। जी, क्यों, हमें अपने से भिन्न ज्ञाति संयोगमें होश खोता है।" ऐसा जानकर हम ज्ञातिसंयोगको छोड़ेंगे।

वह मेधावी समझे—यह ज्ञाति-संयोग आदि तो बाहरी हैं, (उससे तो) अधिक नजीकी यही हैं, जैसे कि, मेरे हाथ०, पैर०, बाहु०, उदर०, उरु०, शिर०, शील०, आयु०, बल०, वर्ण (रंग)०, त्वचा०, छाया०, श्रोत्र०, चक्षु ० घ्राण०, स्पर्श०,। इस प्रकार (पुरुष) ममता करता है, आयुसे जीर्ण होता है। जैसे आयु० स्पर्श से, संधि सुसंधि (जोडों) से ढीली संधिवाला हो जाता है। शरीरमें झुर्रियोंकी तरंगें उठ आती हैं। काले केश सफेद हो जाते हैं। आहारसे तगडा यह स्थूल शरीर क्रमशः छोड़ना पड़ता है।

यह समझकर भिक्षुचर्या स्वीकार किये भिक्षुको लोक दो प्रकारका जानना चाहिये—जीव और अजीव, जंगम और स्थावर ॥१३॥

७ भिक्षुचर्या—

(६४८) यहां दुनियामें गृहस्थ भी हिंसा और परिग्रह युक्त होते हैं, श्रमण-ब्राह्मण भी हिंसा और परिग्रह सहित होते हैं। जो ये जंगम और स्थावर प्राणी हैं, उन्हें वे स्वयं मारते हैं, दूसरोंसे मरवाते हैं, मारने की अनुज्ञा देते हैं। यहाँ गृहस्थ आरंभ-परिग्रह युक्त होते हैं, कोई श्रमण-ब्राह्मण भी आरंभ-परिग्रह सहित होते हैं। वे जो चेतन अचेतन काम-

भोगोंको स्वयं ग्रहण करते हैं, दूसरेसे ग्रहण कराते हैं, दूसरेको ग्रहण करनेकी अनुज्ञा भी देते हैं।

यहां गृहस्थ आरंभ-परिग्रह सहित हैं, और श्रमण-ब्राह्मण भी०:।

मैं (जिन) आरंभ और परिग्रह से रहित हूं। जो गृहस्थ०, कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण आरंभ-परिग्रह सहित हैं, उनके ही निश्रंय (=अवलंब) के द्वारा मैं ब्रह्मचर्य वास करता हूं। सो क्यों ? जैसे प्रव्रज्यासे पूर्व सारंभ-सपरिग्रह थे, वैसे ही पीछे भी। जैसे पीछे भिक्षुदशामें वैसे ही पहले भी। सचमुच ये दोनों दोषोंसे न विरत, न तत्पर थे, पीछे भी वे वैसे ही हैं।

जो गृहस्थ ० या कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण सारंभ और सपरिग्रह हैं। दोनों ही पाप करते हैं। यह जानकर सारंभ सपरिग्रह रूपी दोनों ही अन्तोंको हटाये । इस प्रकार भिक्षु जानता है। सो मैं कहता हूं— "पूर्व दिशामें ०" (६४४ दुहराओ)

इसप्रकार वह कर्मोंका जानकार कर्मोंसे मुक्त होता है, इसप्रकार वह कर्मोंका क्षयकारक होता है। यह भगवान् (महावीर) ने कहा ।।१४।।

(६४६) वहां भगवान् (महावीर काश्यप) ने छ जीव=निकायों (समूहों) को कर्मबंधका हेतु बताया, जैसे पृथिवी निकाय, जल निकाय,० त्रसस्थावर निकाय। जैसे मुझे दुःख लगता है, यदि कोई डंडेसे, मुक्के से, डले से, ठीकरे से, खोपडी से, मारे, कूटे, या धमकाये, डराये, परितापे, थकाये, या उद्विग्न करे। यहाँ तक कि, रोम उखाडने मात्रसे भी हिंसाकारक दुःख भय होता है। यह मैं संवेदन करता हूं। ऐसा जानो, कि सारे जीव, सारे भूत, सारे स्वत्व, डंडेसे ०, कूटे जानेसे०, ० दुःख-भय संवेदित करते हैं। ऐसा जानकर कोई भी प्राण० नहीं मारने चाहिए। नहीं बलात्कृत किये जाने चाहिये, पकडे, न ही परिताप किये जाने, उद्वेजित किये जाने चाहिए।

सो मैं कहता हूँ—"जो अतीत, वर्तमान, और भविष्यमें अर्हत् भगवान् थे, वे सभी ऐसा कहते, भाषते, प्रज्ञापित करते, निरूपण करते

थे, कि किसी प्राण ० को नहीं मारना चाहिये ०। नहीं उद्वेजित करना चाहिये।

यह धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है। लोकको जानकर खेदज्ञ (तीर्थंकरों)ने (इसे) प्रतिपादित किया। इस प्रकार वह भिक्षु प्राण ० मारनेसे विरत···परिग्रहसे विरत होये। न दतवनसे दांतोंको पखारे, न अंजन, वमन धूपनसे, न उसे पीये। यह भिक्षु अक्रिय ० यहां से मर कर देवता ०। ० अथवा "दुख रहित सिद्ध होऊंगा।" तप आदिसे कभी काम-भोग प्राप्त होते हैं, कभी नहीं भी। भिक्षु शब्दोंमें अलिप्त०, क्रोधसे विरत बड़े आदानसे विरत हो उपशान्त होता है। जो ये स्थावर-त्रस प्राणी हैं उन्हें न स्वयं मारता है, न दूसरोंसे मरवाता है, न मारनेकेलिये अनुज्ञा देता है ०। जो ये सचेतन या अचेतन काम-भोग हैं, उन्हें न स्वयं प्रतिग्रह करता, न दूसरोंसे प्रतिग्रह करवाता, न दूसरे प्रतिग्रह करने वालेको अनुज्ञा देता। इस प्रकार इस महान् आदानसे उपशान्त ० होता है।

वह भिक्षु जो यह पारलौकिक कर्म किया जाता है, उसे न स्वयं करता, ०।

इस प्रकार बड़े आदान (संग्रह) से ० प्रतिविरत होता है। वह भिक्षु जाने कि, यह भोजन मेरे सधर्मियोंके उद्देश्यसे प्राणों ० को मार-कर (उनके) उद्देश्यसे खरीदा गया ० है। यदि वह दिया जावे, तो उसे न खाय, न दूसरेको खिलाये, न खानेवालेके लिये अनुज्ञा करे॥

इस प्रकार वह बड़े आदानसे ० प्रतिविरत होता है।

(६५०) वह भिक्षु जाने कि, जिनके लिये ये तैयार किए गए हैं, वे भिक्षु नहीं, बल्कि ये हैं, जैसे कि अपने लिये, पुत्र आदिके लिए, संचित किया है, इन आदमियों के भोजनके लिये है। वहाँ भिक्षु दूसरोंके बनाये, दूसरोंके लिए तैयार किये गये उपज-उत्पाद-एपणा (तीनों) दोपोंसे शुद्ध हथियारोंसे नहीं बना, या हथियारोंसे (कोई जीव) न निर्जीव, न हिंसित किया। भिक्षुचर्याकी वृत्तिका, वेप मात्रका, मधूकरी मात्रका मिला

भोजन ग्रहण करे प्रमाणके अनुसार, पहियेके धुरेके तेल आंजनके समान, या व्रण पर लेप भरके समान, संयमयुक्त देह)यात्रा मात्रकी वृत्तिके लिये, विलमें घुसते सांपके समान भोजन करे। अन्नके समय अन्न, पानके समय पान, वस्तुके समय वस्तु, लेटनेके समय लयन (स्थान), शयनके समय शयन-शय्या ग्रहण करे ॥

वह भिक्षु मात्राका ज्ञान रखते ग्रहण करे। वह भिक्षु किसी दिशा या अनुदिशा में पहुँचकर धर्मकी व्याख्या करे, विभाजित करे, कीर्तित करे। मनके साथ उपस्थित या विना उपस्थित श्रोताओंको निवेदित करे—शांति, विरति, संयम, उपशम, निर्वाण, शौच, ऋजुता, मृदुता, लघुता, सभी प्राणियों ० सत्वोंकी हिंसा न करानेवाले धर्मका सोचकर उपदेश दे।

वह भिक्षु धर्मका कीर्तन करे। न अन्नके लिये उपदेश करे। न पान०, न वस्तु, न लयन०, न शयन०, न दूसरे नाना प्रकारके काम-भोगों के लिये धर्म उपदेश करे। प्रसन्न चित्त हो धर्म उपदेश करे, कर्मोंकी निर्जराको छोड दूसरे उद्देश्यसे धर्म न उपदेशे।

उस भिक्षुके पास धर्म सुनकर, निशमन कर, उत्थानसे संयुक्त हो वीर इस धर्ममें समुत्थित (निरालस) होते हैं। वे इस प्रकार सर्वथा उपशान्त, सर्वथा उपगत, सर्व आत्मासे परिनिर्वाण प्राप्त हैं, यह मैं कहता हूं।

इसप्रकार वह भिक्षु धर्मार्थी-धर्मविद् संयम प्राप्त वैसा है, जैसा कि यहां कहा गया। अथवा वह प्राप्त हो गया है, पद्मवर पुण्डरीकको, अथवा नहीं प्राप्त पद्मवर पुण्डरीकको। इस प्रकार वह भिक्षु कर्म छोड, संग छोडे, गृहवास छोडे, उपशान्त है, समतायुक्त है, सदा सहित है। उसे ऐसा कहना चाहिये—जैसे कि,श्रमण है, ब्राह्मण है, क्षान्त, दान्त, गुप्त, मुक्त है। ऋषि, मुनि, कृती, विद्वान् है। भिक्षु, रूक्ष (रूखा भोजी), तीरार्थी, चरण (मूल गुण), करण(उत्तर गुण), पार का जानकार है ॥१५॥

॥ पहला अध्ययन समाप्त ॥

——

अध्ययन २

१. क्रिया-स्थान

(६५१) आवुसो, मैंने सुना, उन भगवान्‌ने यह कहा—यहाँ क्रिया(कर्म) स्थान नामक अध्ययन कहा गया है। उसका अर्थ यह है कि, यहां सामान्यतः दो स्थान(बातें) कहे जाते हैं—अधर्म, और धर्म, उपशान्त और अन्-उपशान्त। सो जो यहां पहले स्थान—अधर्म पक्ष का विभंग(विवरण) है, उसका यह अर्थ बतलाया गया है। यहां पूर्वदिशामें कोई ऐसे मनुष्य होते हैं, जैसे आर्य और अनार्य० (दुहराओ६४४), कोई सुरूप कोई दुरूप।

देखकर दण्ड-समादान (दण्ड करना) देखकर उनका इस प्रकारका संकल्प होता है: नारकीयोंमें पशुओंमें मनुष्योंमें और देवताओंमें जितने उस प्रकार के विद्वान् प्राणी कष्ट अनुभव करते हैं, उनके भी ये तेरह क्रिया-स्थान होते हैं, यह कहा गया, जैसे कि: (१)अर्थके लिये क्रिया (दण्ड), (२) विना अर्थके क्रिया, (३) हिंसा-क्रिया, (४) अकस्मात् क्रिया, (५) उलटी दृष्टि (दर्शन) के कारण क्रिया, (६) झूठ-संबंधी क्रिया, (७) चोरी (अदत्तादान) सम्बन्धी क्रिया, (८) मान संबंधी बुरे विचार, (९) अध्यात्म दोष(बुरेविचार) संबंधी, (१०) मित्रद्वेष सम्बंधी, (११) माया सम्बन्धी, (१२) लोभ सम्बन्धी, और (१३) ईर्यापथ (साधारण शरीर गति) सम्बन्धी ॥१६॥

(६५२) पहले दण्ड-समादान अर्थके दण्डकी क्रिया की बावत यहां कहा जाता है, जैसे कि,

(१) कोई पुरुष अपने लिये, या ज्ञातिकेलिये, या घरकेलिये, या परिवारकेलिये, या मित्रके लिये, नागके लिये, या भूतके लिये, या यक्षकेलिये, उस(क्रियारूपी)दण्डको जंगम-स्थावर प्राणियोंपर स्वयं छोडता है, या दूसरे से छुड़वाता है, या दूसरे छोडनेवालेका अनुमोदन करता है। इस प्रकार उसका वह उसके सम्बन्ध वाला, काय (दण्ड)सदोष

कहा जाता है। प्रथम दण्डसमादान-अर्थके लिये, दण्डसंबंधी यह कहा गया ॥

(६५३) अब दूसरा क्रिया-स्थान व्यर्थ ही किये कर्म संबंधी कहा जाता है। : जैसे कि—

(२) जो ये त्रस-स्थावर प्राणी हैं। उन्हें कोई पुरुष न अर्चाके लिये, न मृगछालाके लिये, न मांसके लिये, न रक्तके लिये, न कलेजेकेलिये, न पित्तकेलिये, न चर्बीकेलिये न पिच्छ(पंख)केलिये, न पूंछके लिये, न वालकेलिये, न सींगकेलिये, न दांतकेलिये, न दाढ-केलिये, न नखकेलिये, न नसोंकेलिये, हड्डीकें लिये, न हड्डीमज्जाके लिये, न इसलिये कि मुझे मारा, मुझे मार रहा है, या मुझे मारेगा, न पुत्रको पोसनेके लिये, न पशुको पोसनेके लिये, न घरके परिवर्धनके लिए, न श्रमण-ब्राह्मणके वर्तनेकेलिये, न यह कि उसके शरीरकी कुछ रक्षाके लिये होगा। तब भी वह छेदन-भेदन करनेवाला, लोप-विलोप करनेवाला, उपद्रवकारी हो, संयम छोड़ वैरका भागी होता है। यह व्यर्थका क्रिया-रूपी दण्ड है।

जैसे, कोई पुरुष ऐसा करे, कि, ये जंगम प्राणी हैं, जैसे कि अंकरी (इक्क) आदि, या जन्तु आदि, या परक आदि, या मोथा (मुस्तक) आदि, या तृण आदि. या कुश आदि, या कुच्छक आदि, या पर्वक आदि, या पुआल आदि, उनके वैरका भागी होता है, विना अर्थके ही उन्हें न पुत्रके पोसनेके लिये ० संयम छोड़कर, उनके वैर का भागी होता है।

जैसे कि, कोई हीन पुरुष कछारमें, वा दहमें, या जलमें, या वृक्षमें, या लतामें, या अंधेरे में, या गहनदुर्ग(स्थान)में, वनमें, या दुर्गमें, पर्वतमें, या पर्वत-दुर्गमें घासको रख-रखकर स्वयं आग जलाये, या दूसरेसे जलवाये, या आग जलाते दूसरे आदमीका अनुमोदन करे। यह व्यर्थ क्रियारूपी दण्ड है। इसप्रकार उसका वह तत्संबंधी कार्यरूपी दण्ड सदोष कहा जाता है, व्यर्थका द्वितीय दण्ड-समादान कहा गया ॥१८॥

(६५४) अब हिंसा कर्म सम्बन्धी तीसरा दण्ड-समादान कहा जाता है।

(३) जैसे कि, कोई पुरुष इसलिये हिंसा करता है, कि, इसने मुझे या मेरोंको, या अन्योंको या अन्यदीयोंको मारा, मार रहा है, या मारेगा; यह सोचकर उस हिंसाकर्मरूपी दण्डको जंगम या स्थावर प्राणीपर स्वयं ही छोड़ता है, या दूसरेसे छुड़वाता है, या दूसरे छोडते(पुरुष)का अनुमोदन करता है। यह हिंसादण्ड है। हिंसादण्ड संबंधी तीसरा दण्ड-समादान बतलाया गया ॥१९॥

(६५५) अब चौथा दण्ड-समादान (क्रिया करना), अकस्मात् किये गये कर्म दण्ड संबंधी कहा जाता है।

(४) जैसे कि, कोई पुरुष कछारमें(दुहराओ ४५३ ग) वन-दुर्गमें मृगवृत्ति (शिकारी), मृग मारनेके संकल्प वाला, मृग मारने का निश्चय किये मृग मारनेकेलिये जानेवाला, "ये मृग हैं", यह मनमें कर किसी एक मृग के वधके लिये वाण उठाकर छोड़े। वहाँ मृग मारूँगा, यह सोच तित्तिरका, या वत्तकका, या चटका का, या लवा का, या कबूतर का, या कपि का, या कपिंजल का मारनेवाला होता है। यहां वह दूसरेको मारनेका विचार कर दूसरेको अकस्मात् मार देता है।

जैसे कि कोई धानपर, व्रीहि पर, कोदव पर या काँगुन पर, परक या राल पर, दूसरे तृणके वधके लिये शस्त्रको छोडे, वह सवाँके तृण को, कुमुदको धानोंमें जमे हानिकारक तृणोंको काटूंगा, यह सोच शालि, धान, कोदव या काँगुन, परक या रालको काट दे। इस प्रकार दूसरेके ख्यालसे दूसरेको मार दे। यह अकस्मात् दण्ड है।

इस प्रकार उसका तत्संबंधी कर्म सदोष है।

अकस्मात् दण्ड संबंधी चौथा दण्ड-समादान कहा गया ॥२०॥

(६५६) अब पांचवां दण्ड-समादान उल्टी दृष्टि-संबंधी कहा जाता है:

(५) जैसे कोई पुरुष माताओंके साथ, या पिताओं साथ, भाइयों के साथ, या वहनोंके साथ, या भार्याओंके साथ, या पुत्रोंके साथ, या पुत्रियों के

साथ, या वहुओं के साथ, निवास करते, (किसी) मित्र को अ-मित्र समझ कर मार दे। यह उलटी दृष्टि संवंधी दण्ड (कर्म) है।

जैसे, ग्राम-घातके समय, या नगर घातके समय, या खेडे, कर्वट मडमट के वधके समय, या द्रोणमुखके वधके समय, या पत्तनके वधके समय, या आश्रम०, या निगम०, या राजधानीके वधके समय, कोई पुरुष अ-चोरको चोर समझकर०मार दे। यह दृष्टि.विपर्यास दण्ड (कर्म) है। इसप्रकार तत् संवंधी (कर्म) सदोष कहा जाता है।

दृष्टि.विपर्यास संवधी पंचम दण्ड समादान कहा गया ।।२१।।

(६५७) अव झूंठ संवंधी क्रिया-स्थान कहा जाता है।

(६) जैसे कोई अपने लिये, ज्ञाति (जाति) के लिये, घरके लिये, परिवारकेलिये, स्वयं झूंठ वोलता है, या दूसरेसे झूंठ बुलवाता है, या अन्य झूंठ वोलते-का अनुमोदन करता है, इस प्रकार यह उसका सदोष (कर्म) कहा जाता है।

झूंठ वोलनेके संवंधमें छठवाँ क्रिया-स्थान कहा गया ।।२२।।

(६५८) अव अन्य चोरी संवंधी सातवां दण्ड-समादान कहा जाता है।

(७) जैसे कोई पुरुष अपने लिये ० स्वयं ही चोरी (अदत्तादान) करे, दूसरे से चोरी करवाये, या चोरी करते अन्यका अनुमोदन करे। इस प्रकार ०। चोरी संवंधी सातवां क्रिया-स्थान कहा गया ।।२३।।

(६५९) (८) अव अध्यात्म संवंधी आठवां क्रिया-स्थान कहा जाता है। जैसे कष्ट देनेवाले किसीके न होते भी कोई पुरुष स्वयं ही हीन, दीन, दुःखी, दुष्ट, दुर्मन, मनके संकल्पोंको मारे, चिन्ता रूपी शोकसागरमें डूवा, हथेली पर मुख रक्खे, आर्तध्यानसे युक्त हो, ज़मीन पर नज़र गडाये झंखता है। उसका असंदिग्व आध्यात्मिक चार स्थान ऐसे जान पडते हैं। जैसे कि क्रोध, मान, माया, लोभ हैं। इसप्रकार ० अध्यात्म संवंधी आठवाँ क्रिया-स्थान कहा गया ।।२४।।

(६६०) अव अभिमान संवंधी नवां क्रिया-स्थान कहा जाता है। जैसे कि,

(९) कोई पुरुष जाति मदसे, कुल-मदसे या वल-मद से, या रूप-मदसे तप-मदसे या विद्या-मदसे, या लाभ-मदसे, या ऐश्वर्य-मदसे, या प्रज्ञा-मदसे, अथवा इनमेंसे किसी भी मदसे, दूसरेको हेठाता है, निन्दता, जुगुप्सता, गर्हित करता, परिभव करता, अपमान करता है: "यह छोटा है, मैं हूं विशिष्ट जाति-कुल-वल आदिसे समृद्ध।" इस प्रकार अपनेको बडा करता है। वह देह छोडने पर वेवस हो कर्मको साथी वना प्रयाण करता है। कैसे जाता है? एक गर्भसे दूसरे गर्भमें, एक जन्मसे दूसरे जन्म, एक मरणसे दूसरे मरण एक नरकसे दूसरे नरकमें। वह चण्ड, चपल माना जाता है। इस प्रकार ०

मान संवंधी नवां क्रिया-स्थान कहा गया ॥२५॥

(६६१) मित्र-दोष संवंधी दसवां क्रिया-स्थान,

(१०) जैसे कि कोई पुरुष माताओं०के साथ निवास करते, उनमें से किसीके हलके अपराध पर भारी दण्ड देता है। (कैसे दण्ड?) जैसे कि सरदीमें ठंडे जलमें छोडे, गर्मी के दिनोंमें गर्म जलसे शरीरको जलाये, शरीर पर छिडके, आगसे कायाको दागे, जोते से, वेंतसे, चमडे से, कोडे से, प्रलतासे, किसी प्रकार के दवर(रस्सी)से करवट का फाडनेवाला होता है। दण्डसे, हड्डीसे, मुक्केसे, डलेसे, या खोपडी से शरीरको कूटता है। ऐसे पुरुषके घर पर रहते परिवारवाले दुर्मन होते हैं, परदेश जाने पर खुश होते हैं। ऐसा पुरुष डण्डा वगलवाला, डंडेसे भारी वना, डण्डे-को सामने रखनेवाला, इस लोकमें भी सवका अहित, परलोकमें भी अहित जला-भुना, क्रोधी. पीठका मांस(चुगली)खानेवाला होता है, इस प्रकार ०

मित्र-दोष संवंधी दशवां क्रिया-स्थान कहा गया ॥२६॥

(६६२) माया संवंधी ग्यारहवां क्रिया-स्थान कहा जाता है।

(११) जो ये गूढाचारी, अंधेरेमें दुराचार करनेवाले, उल्लूके पंख जैसे हलके होनेपर भी अपनेको पर्वत जैसा भारी लगाते (मानते) हैं। वे आर्य जातिके होते भी अनार्य (कटु) भाषायें वोलते हैं। दूसरे होते अपनेको दूसरा समझते हैं। दूसरा पूछने पर दूसरा उत्तर देते हैं, अन्य कहनेके स्थान पर दूसरा कहते हैं।

जैसे कि, किसी पुरुषको शल्य(भीतर)शरीरमें लगा हुआ है। उस शल्यको न वह स्वयं निकाले, न दूसरे से निकलवाये, न उसे नष्ट करवाये, यों ही छिपाता। पीडित होता, भीतरसे यातना सहे। इसी प्रकार मायावी माया करके न आलोचना करता, न पछताता, मायावी न इस लोकमें विश्वास-पात्र होता, न परलोकमें,। वह दूसरेको निन्दता, गर्हता अपनी प्रशंसा कराता, धर्मसे बाहर चला जाता। उसमें फिर लौटता नहीं। करके भी वह अपने कर्म(= दण्ड)को छिपाता है। मायी पुरुष शुभ वृत्तिओंसे विमुख होता है। इस प्रकार ०।

माया संबंधी ग्यारहवां क्रिया-स्थान कहा गया ॥२७॥

(६६३) अब अन्य लोभ-सम्बन्धी बारहवां क्रिया-स्थान कहा जाता है।

(१२) जो ये अरण्यवासी, आवसथ(पांथशाला)वासी, ग्राम-वासी, रहस्य-क्रियारत लोग, न बहुत संयमी, न बहुत विरक्त हैं। वे सारे प्राणियों, भूतों, जीवोंमें (हिंसा) विरत नहीं। वे सब झूंठ मिलाकर ऐसी बात बोलते हैं—मैं मारने वाला नहीं, दूसरे मारनेवाले हैं। मैं आज्ञा करणीय सेवक नहीं, दूसरे आज्ञा करणीय हैं। मैं परितापनीय नहीं, दूसरे परितापनीय हैं। मैं परिग्रह (दास) बननेयोग्य नहीं, दूसरे परिग्रहीतव्य हैं। मैं उपद्रवका-पात्र नहीं, दूसरे०। इसी प्रकार वे स्त्री-भोगोंमें लिप्त, लोभित, गुंथे, गर्हित, आसक्त हैं। चार, पांच, छ, दस वर्ष, कम या अधिक भोगोंको भोगकर काल और मास आने पर मर के, किसी एक आसुरिक, पापयुक्त स्थानमें पैदा होनेवाले हैं। वहां से च्युत हो मूर्खताके लिये, अंधेपनके लिये जन्मना, गूंगे होनेके लिये इस लोकमें पुनः पुनः लौटते हैं। इस प्रकार ०।

लोभसंबंधी बारहवां क्रिया-स्थान कहा गया ॥२८॥

(६६४) अब ईर्या-पथ संबंधी तेरहवां क्रिया-स्थान कहा जाता है।

(१३) अनागार (साधु), आत्माकी रक्षाके लिये संयमी होता है।

वह ईर्यासे समित (समतायुक्त) होता है, भाषण-समित, एषणा-समित, आदानमें, भण्ड-वस्तुमें, मात्राके निक्षेपण की समितियोंमें-समित होता है। पाखाना, पेशाब-थूक-नासामल-के फेंकनेमें समित होता है। मनसे गुप्त (रक्षित-संयत) वचनसे गुप्त, कायासे गुप्त, इन्द्रियोंसे रक्षित, ब्रह्मचर्य-रक्षित होता है। आयोग (स्मृति-सम्प्रजन्य) से युक्त होता, चलता, आयोग युक्त बैठता० करवट बदलता,० भोजन करता०, भाषण करता ०, वस्त्र०, कंबल, पादपोंछन लेता, रखता, यहां तक कि पलक गिरना भी यतन-उपयोगके साथ ही गिराता है। ईर्या-पथ-संबंधी क्रिया नाना मात्राओं की और सूक्ष्म हैं। वह अनुष्ठान द्वारा की जाती हैं। वह प्रथम समयमें बंधन और स्पर्श वाली होती है, दूसरे समयमें अनुभव की जाती, तीसरे समयमें निर्जरित होती है। ईर्यापथव्रती बंध, स्पर्श निर्जरताको अनुभव कर अन्तिम कालमें अकर्मताको प्राप्त होता है। इसप्रकार ईर्यापथ संबधी सदोष क्रिया होती है। वह तेरहवां क्रिया-स्थान ईर्या-पथ संबंधी कहा जाता है।

सो मैं कहता हूँ, कि जो अतीत, वर्तमान, और आनेवाले भगवान् हैं, उन सभीने इन तेरह क्रिया-स्थानोंको कहा, कहते और आगे भी कहेंगे। ऐसे तेरह क्रिया-स्थानोंको सेवित किये, करते और करेंगे॥२६॥

२-अधर्मपक्ष

(६६५) इसके बाद पुरुषविजय (नामक) विभंगको बतलाऊंगा। यहां नाना रूपकी प्रज्ञावाले, नाना छन्दवाले, नाना दृष्टिवाले, नाना रुचि-वाले, नाना आरंभवाले, नाना अध्यवसायोंसे युक्त, नाना प्रकारके पाप (बुरे) श्रुत(शास्त्र वाले, पुरुषोंको ऐसा होता है।

जैसे कि, निम्न विद्यायें—भूकम्प वाणी करनेकी विद्या, उत्पात, स्वप्न, आकाश, शरीर-अंगकी विद्या, स्वरलक्षण, स्त्री-लक्षण, पुरुष-लक्षण, अश्व-लक्षण, गज-लक्षण, गाय-लक्षण, भेड-लक्षण, मुर्ग-लक्षण, तीतर-

असि०, मणि०, कौडी०, सुभगा करनेवाली(विद्या), दुर्भगाकरी, गर्भ-करी, मोहन-करी, अथर्व-वेदी, पाकशासनी(इन्द्रजालिक), द्रव्यहोम, क्षत्रिय-विद्या, चन्द्र-चरित,सूर्यगति, शुक्र-गति, वृहस्पति-गति, उल्कापात, दिशा-दाह, मृगचक्र, कौश्रोंकी पंचायत, धूलि-वृष्टि, केश-वृष्टि, मांस-वृष्टि, रुधिर.वृष्टि, (काष्टमें चेतना पैदा करनेवाली) वेताली, चाण्डाली, शाम्बरी (सावरी), द्रविड देश वाली, कलिंगवाली, गौरी, गांधारदेशी, नीचे गिरानेकी, ऊपर उठानेकी, जड बनानेवाली (जृम्भिणी), स्तम्भनी, श्लेषणी, रोगकारणी, निरोगकारणी, भूत दूर करनेवाली, (प्रक्रामणी) अन्तर्धान करानेवाली, वडी वनाने वाली, (आयामिनी),-इत्यादि विद्याओं (जादू-टोनों) का अन्नकेलिये प्रयोग करते हैं, पान के०, वस्त्र०, लयन०, शयन०, और भी नाना प्रकारके काम-भोगोंकेलिये प्रयोग करते हैं, उलटी विद्याओंका सेवन करते हैं।

वे अनार्य भ्रममें पडे कालके समय काल करके किसी एक आसुरी, किल्विष वाले स्थानोंमें उत्पन्न होनेवाले होते हैं। वहाँ से भी छूटकर फिर भी अंधे, गूंगे होनेके लिये, तममें अंधा बननेकेलिये इस लोकमें लौटते हैं ।।३०।।

(६६६) जो उनमेंसे कोई अपनेलिये, ज्ञातिके लिये, शयनके लिये, आगारकेलिये, परिवारके लिये, जातिवालों या सहवासीके निमित्त निम्न पाप करते हैं—पीछा करनेवाले (अनुगामिक) चोर, सेवा कर ठगनेवाले (उपचारक), बटमार, अथवा सेंध लगानेवाले, अथवा गिरहकट होते हैं। अथवा भेड-वधिक, शूकर०, जालशिकारी, चिडीमार, या मछुआ, गो-घातक, ग्वाला, कुत्ता-पालक, कुत्तेसे शिकार करनेवाला होता है।

कोई अनुगामी (ठग) का भेस ले, अनुगमन किये जानेवालेको मार कर, छिन्न-भिन्न कर, लोप-विलोप कर या भागकर आहार प्राप्त करता है। इसप्रकार वह भारी पाप कर्मोंके साथ अपनेको प्रसिद्ध करता है। वह ऐसा आदमी (उपचारक) सेवकका रूप ले उसी उपचार (सेवा) किये जाते पुरुषको मारकर, टूक-टूक कर० आहार जमा करता है। इसप्रकार ०।

सो वह वटमार०, वह सेंध लगानेवाला०, गिरहकट०, भेड कसाई बन भेडको या दूसरे जंगम प्राणीको मार०, अपनेको नामवर ख्यापित करता है ०। सूअर-कसाई०, जालशिकारी०, चिडीमार०, मछुआ०, गोघातक०। ग्वाला बनकर उसी गो के बछडेको चुनकर मार मार कर० प्रसिद्ध होता है। कुत्तापालक हो उसी कुत्ते या अन्य किसी जंगम प्राणी-को मार कर०। ० कुत्तोंके साथ शिकारी का भाव ले उसीसे मनुष्य या किसी जंगम प्राणीको मार कर आहार जमा करता है, ऐसे बहुतसे पाप कर्मोंसे अपनेको प्रसिद्ध करता है० ॥३१॥

(६६७) सो कोई पुरुष परिषद्से उठकर "मैं इसको मारूंगा" यह कह तीतरको, या बत्तकको, या लवेको, कबूतरको, कपिंजल या किसी अन्य जंगम प्राणीको मारनेवाला प्रसिद्ध होता है। किसी बुरी चीजके देनेसे विरोधी बन, अथवा सडी चीज देनेसे, या सुरा स्थालकसे कुपित हो, उक्त गृहपति या गृहपतिके पुत्रोंकी खेतीको स्वयं जलाता है, या दूसरे के द्वारा०, या जलाते हुये अन्य पुरुषका अनुमोदन करता है। इस प्रकार भारी पापकर्मसे अपने को प्रसिद्ध करता हैं।

सो कोई किसी बुरी चीजके देने ०, गृहपतिके ऊंटों, गाय-बैलों, घोडों, गदहोंके अंग आदिको स्वयं ही काटता है, अन्य किसीसे कटवाता है, या काटते दूसरे (पुरुष) का अनुमोदन करता है। इस प्रकार०।

० कोई गृहपति० को, ऊंटसार को, गोसार को, घोडसारको, गदह-सारको, कांटेकी ढीखर(शाखाओंसे)रूंधकर स्वयं आगसे जलाता है,०।

० गृहपतिके० कुण्डलको, या मणिको मोतीको स्वयं चुराता है,०।

० श्रमणोंके-ब्राह्मणोंके छत्तेको, दण्डको, भाण्डको, पात्रको, लाठीको, बिछौनेको, कपडेको, चादरको, चर्मासनको, छुरेको, या म्यानको, स्वयं चुराता है०।

सो कोई विना सोचे ही गृहपति०की फसलको स्वयं जलाता है०।

० ऊंटों, गायों, घोडों, गदहोंके अंगोंको स्वयं ही काटता है० ।

० ऊंटसार, ० गदहसारको कांटे की शाखाओंसे रूंधकर आगसे जलाता है० ।

० कुण्डलको, मोतीको स्वयं चुराता है० ।

० श्रमणों, ब्राह्मणोंके छाते० चर्मखण्डको स्वयं चुराता है० ।

कोई श्रमण या ब्राह्मणको देखकर नाना प्रकारके पाप कर्मोंसे अपनेको प्रसिद्ध करता है, अथवा (उपहासार्थ) अच्छटा (चुटकी) बजानेवाला होता है, कठोर बोलता है। समय आने पर भी अन्न पान नहीं देता।

वे (लोग) श्रमणोंके बारेमें कहते हैं—"जो नीच, भार ढोनेवाले (कुली), आलसी, वृषल (म्लेच्छ जातिक), कृपण, दीन हैं, वे श्रमण होते हैं, प्रव्रज्या लेते हैं। वे इस धिक्कार वाले जीवनको वहन करते हैं। वे परलोकके लिये कुछ भी नहीं करते। वे दुःख सहते, शोक करते, झुरते, पछताते, पीडित होते, पिटते, परिताप सहते हैं। वे दुःख-झूरन-पीडन-पिट्टन-परितापन-वध-बंधन रूपी क्लेशोंसे निरन्तर लिप्त होते हैं। वे भारी आरम्भ (हिंसा) से, भारी समारम्भसे, भारी आरम्भ-समारम्भसे, नाना प्रकारके पाप कर्म रूपी कृत्योंसे बडे मानुषिक भोगोंको भोगनेवाले होते हैं। (कौन से भोग?) जैसे कि, भोजनके समय भोजन, पानके समय पान,० वस्त्र०, लयन०, शयन०। वे सायं प्रातः स्नान किये, शिरसे न्हाये, कण्ठमें माला धारे, मणि-सुवर्ण पहने, फूलोंके मौर को धारे, कर्धनी, माला दामके समूहको लटकाये, नवीन धुले वस्त्र पहिने, चन्दन चर्चित शरीरवाले, भारी विशाल कोठेकी दलानमें भारी विस्तृत सिंहासन पर स्त्री-समूहसे घिरे बैठते हैं। सारी रात दीपकके जलते, बाजे बजाते, नाट्य-गीत-वाद्य-वीणा तल-ताल-त्रुटित-मृदंगके पटु बजाते स्वरके साथ बडे मानुष भोगोंको भोगते मौज़ करते हैं।

वह एक आज्ञा देने पर बिना बुलाये चार-पांच पुरुष उठ खड़े होते हैं, और कहते हैं—कहें देवताओंके प्रिय, क्या करें, क्या लायें, क्या भेंट

करें ? क्या काम करें ? क्या है आपका हित-इष्ट (पदार्थ) ? आपके मुखारविंदको क्या स्वादिष्ट लगता है ?" उसको देखकर अनार्य (चापलूस) बोलते हैं—"यह पुरुष देवता हैं। यह पुरुष देवस्नातक हैं। यह पुरुष तो निश्चय देवजीवनवाले हैं। दूसरे भी इनके सहारे जीते हैं।" उसको देखकर आर्य (पुरुष) कह उठते हैं—"यह पुरुष क्रूरकर्मा है। यह पुरुष अतिधूर्त है। अतिस्वार्थी, दक्षिण (नरक) गामी नारकीय, काली करतूत वाला है, और भविष्यमें ज्ञानसे वंचित होगा।

इस प्रकार मोक्षकेलिये प्रव्रजित हो कर उठे भी कोई इस भोगी पुरुष जैसे स्थानको पाना चाहते हैं। न उठे (अप्रव्रजित) भी चाहते हैं, अतिलोलुप भी चाहते हैं। यह स्थान (भोग) अनार्य है, मोक्ष से हीन है, अपूर्ण, न्याय-रहित, अशुद्ध, दुःखशल्यके न काटनेका, सिद्धि-मार्ग-विमुख, पूर्णतया मिथ्या और अ-साधु स्थान है,

अ-धर्म-पक्षके विभागका यह प्रथम स्थान है ॥३२॥

३ धर्म-पक्ष विभाग

(६६८) अब दूसरा धर्म-पक्षका विभाग ऐसे कहा जाता है।

यहां पूर्वमें, पश्चिममें, उत्तरमें, या दक्षिणमें कोई-कोई ऐसे मनुष्य होते हैं, जैसे कि—कोई आर्य, कोई अनार्य, कोई उच्च-गोत्र, कोई नीच-गोत्र, कोई अच्छी काया वाले,० (दुहराओ ६४४) पुण्डरीक सा,० सर्वशान्त, सर्व आत्मासे परिनिर्वाण प्राप्त, उन्हें मैं कहता हूं।

यह स्थान है आर्य (श्रेष्ठ), केवल (ज्ञान) का०, सारे दुःखोंके नाशका एकान्त, ठीक, उत्तम (मार्ग) है।

द्वितीय धर्म-पक्षस्थानको इस प्रकार कहा गया ॥३३॥

अब तीसरे मिश्रक स्थानका विभाग ऐसे कहा जाता है।

४ पाप-पुण्य मिश्रित कर्म

(६६९) वे जो श्रमण आरण्यक होते हैं (दुहराओ ६४४)०वे वहाँ से छूट मरकर, फिर एष-मूडक, गूंगे-बावले होनेकेलिये, फिर अंधे होनेकेलिये,

इस दुनियामें लौटते हैं। यह स्थान है अनार्य, अ-केवल० न-सव दुःख-मार्ग नाशका-मार्ग, बिल्कुल मिथ्या, बुरा।

तृतीय मिश्रक स्थानको इस तरह कहा गया ॥३४॥

५ अ-धर्म पक्ष विभंग

(६७०) अब प्रथम अधर्मपक्षस्थानका विभंग कहा जाता है॥

यहां पूर्वमें० कोई मनुष्य गृहस्थ, महेच्छुक, महा-आरंभ, महापरिग्रह, अधार्मिक, अ-धर्मानुगामीं अधर्मिष्ट, अ-धर्मवादी, अधर्मआयः जीविकावाले, अधर्म देखनेवाले, अधर्ममें लिप्त, अधर्मयुक्त शील (आचार) वाले, अधर्मसे ही जीविका करते विहरते हैं। मारो, छेदो, काटो, (कहते), जीवोंके काटनेवाले, खून रंगे हाथ वाले; चण्ड, रौद्र, क्षुद्र, दुस्साहसी, (होते हैं), घूस-वंचना-ठगी-ढोंग बटमारी-कपट आदि के बहुत प्रयोग करनेवाले होते हैं। दुश्शील, दुर्व्रत होते हैं। सारी हिंसाओंसे अविरत, जीवन भर सारे परिग्रहोंसे अविरत, सारे क्रोधसे० मिथ्यादृष्टि (रूपी) शल्यसे अविरत, नहाने, शरीर दवाने, रंग लेपने, शब्द-रूप-रस-गंध-माला-अलंकार धारनेसे जीवन भर अविरत रहते। सारे गाड़ी-रथ-यान-युग्य-गिल्लि-थिल्लि-स्पन्दन-शयन-आसन-वाहन-भोग्यवस्तु बहु प्रकार के भोजनके विधानसे जीवन भर अविरत रहते। सब तरहके बेचने-खरीदने, मासे, आधेमासे, रुपयेके व्यवहारसे जीवन भर अविरत रहते। सब तरहके अशर्फी, सोने, धन-धान्य, मणि-मोती, शंख, शिल, मूंगेसे जीवनभर अविरत रहते हैं। सब तरह के डंडी मारने, बाट मारने से जीवनभर अविरत होते। सब प्रकारके आरम्भ समारम्भ, सब प्रकारके पकाने-पकवानेसे जीवन भर अविरत। सब तरहके कूटने, पीटने, तर्जने, ताडने, वध-बंधन, और क्लेशदेनेसे जीवनभर अविरत होते हैं।

जैसे कि, कोई-कोई पुरुष चावल, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, निष्पाव, कुलथी, चंवला, परिमन्थक, आदिको अत्यन्त क्रूर मिथ्यादण्ड (कष्ट) देते। ऐसे ही दूसरे प्रकारके पुरुष, तीतर, वटेर, कबूतर, कपिजल, मृग, भैंस, सूअर, मगर, गोह, कछुये, सरकनेवाले जन्तु आदि पर अत्यन्त क्रूर

दण्ड देते हैं। उनकी बाहरी जमात होती है, जैसे कि, (क्रीत) दास, पठवनिये, नौकर, पत्तीदार, कर्मकर भोग समान पुरुष। छोटेसे अपराध पर उनको स्वयं ही भारी दण्ड देते हैं। जैसे (कहते हैं)…† इसे डंडो, इसे मूँड दो, इसे तर्जना दो, इसे ताड़ना दो, इसकी मुसुक बाँधो, इसे बेड़ी लगाओ, इसे हाडीबंधन करो, इसे चारक बंधन करो, इसे दो जंजीरोंमें सिकोड़कर लुढका दो, इसे हथकटा करो, इसे पैरकटा करो, इसे कनकटा करो, इसे नाक-ओठ-शिर-मुंहकटा करो। इसे उपाडे नयनोंवाला करदो। इसे दांत उपाडा बना दो। इसे बेहोश और अंग-छिन्न बनाओ। इसे पलककटा बनाओ। इसे अण्ड निकाला, जिह्वा निकाला बना लटका दो। इसे धरती पर घसीटता, पानीमें डुबोया बनाओ. सूलीपर चढ़ाओ। सूलीसे छिन्न भिन्न बनाओ। नमक छिड़का बनाओ। वध्य हुआ बनाओ। इसे सिंहपुच्छितक- बैल पुच्छितक बनाओ। जंगली आगमें जला बनाओ। इसे कौवेका खाया जानेवाला मांस बनाओ। इसे भात-पानी न दो। इसे जीवन भरका वध-बंधन कर दो। इसे बुरी मार से मार दो।

जो उसकी भीतरी (घरु) जमात होती है, जैसे कि माता, पिता, भाई, बहन, भार्या, पुत्र, पुत्री, बहू। उनके छोटेसे अपराध पर स्वयं भारी दण्ड देता है। विकट ठंडे जलमें फेंक देते हैं। जो दण्ड शत्रुओंके लिये कहे गये हैं, वे देते हैं। वे परलोकमें दु.खित होते, शोक करते, झंखते हैं, कष्ट पाते, पीड़ित होते, परितप्त होते हैं। वह दुःखने० झंखने परितापन, वध-बंधन परिक्लेशसे अविरत होते हैं।

इसी प्रकार वे स्त्रीभोगमें मूर्छित, लोभित, गुंथे, आसक्त, चार-पाँच-छ-दश वर्षोंतक कम या बेशी काल तक भोगोंको भोगकर, बहुत सारे

† राजदण्डोंको मिलाओ, मज्झिमनिकाय, (महादुक्खक्खंधसुत्त १-२-३)

वैर समूह संचित कर, बहुतसे पाप कर्मोंका संचय कर पापके भारसे वैसे उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे कि, लोहेका गोला या पत्थरका गोला पानीमें फेंकने पर पानी पार कर धरतीके तल पर जाकर टिकता है। ऐसे ही ऐसा पुरुष बहुतसे पर्यायों तक दुःखोंवाला, कष्टवाला, वैरोंवाला, अविश्वासोंवाला, दम्भोंवाला, नियतोंवाला, अपयशोंवाला, त्रस-जंगम प्राणियोंका घातक, काल पा मर कर पृथिवी तल को छोड नरकतलमें जा के टिकता है ॥३५॥

६. नरक आदि गति

(६७१) वे नरक भीतरसे गोल बाहरसे चौकोने, नीचे खुरपेके आकारमें अवस्थित हैं। वह नित्य ही घोर अंधकारवाले, ग्रह-चन्द्र-सूर्य-तारों-तारापथोंसे रहित है। चरवी-वसा-खून-पीव-समूहसे लिप्त लेपनके तलवालेहैं। वे अशुचि, विसानेवाले, परम दुर्गन्धवाले, काले, अग्निवाणसे, कर्कश स्पर्शयुक्त, असह्य, बुरे हैं। नरक अशुभ हैं। नरकोंमें यातना अशुभ होती है। नरकोंमें नारकीय (पुरुष) नहीं सो सकते, न भाग सकते। वह शुचि, रति, धैर्य, या मतिको नहीं पा सकते। वे (नारकीय) वहाँ जलती, भारी, विपुल, कडवी, कर्कश, दुःखमय, दुर्गम, तीव्र, दुस्सह पीडाको भोगते हैं। जैसे कोई पेड़ पर्वतके ऊपरी भाग पर उत्पन्न हो। उसकी जड़ कटी, ऊपरकी ओर भारी हो, निम्न या विषम, दुर्गम होनेके कारण वहां से वह गिर जाये। ऐसे ही वैसा पुरुष एक गर्भसे दूसरे गर्भ में जाता है, एक जन्मसे दूसरे जन्म में, ० मरणमें, ० नरक,० दुःखमें जाता है। दक्षिणकी ओर जानेवाला वह नारकीय पुरुष काले पक्षवाला हो समझनेमें दुष्कर भी होता है।

यह स्थान अनार्य, अ-केवल ० न-सर्वदुःखनाशक मार्ग, बिल्कुल मिथ्या और बुरा है। प्रथम अधर्मपक्ष स्थानका विभंग ऐसे कहा गया ॥३६॥

७ आर्य धर्मपक्ष स्थान

(६७२) अब अन्य द्वितीय धर्मपक्षस्थानका विभंग ऐसे कहा जाता है।

यहां पूर्वमें ० कोई कोई मनुष्य होते हैं, जो—आरम्भहीन, परिग्रह-हीन, धार्मिक, सुज्ञ, धर्मिष्ठ होते हैं। ० वे धर्मसे ही जीवन वृत्ति करते विहरते हैं। वे सुशील, व्रतयुक्त, आनन्दप्रवण, सुसाधु होते हैं। वह सब तरहसे जीवनभर हिंसा-विरत होते हैं, ०

जैसे आगारहीन (अर्हत्) भगवान् ईर्याकी समिति (संयम), वाणीकी समिति, एषणा०, आदान०, आवश्यक सामग्रीके ग्रहणमें वस्तुओंकी मात्रा और निक्षेपकी समितिसे युक्त होते हैं। वे पेशाव-पाखाने-थूक-(नासिकामल) के डालनेमें समित, वचनमें समित, कायामें मनसे संयत, वचनसे संयत, कायसे गुप्त (संयत), गुप्त-इन्द्रिय, गुप्त-ब्रह्मचर्य होते हैं। वे क्रोध, मान, माया, लोभसे हीन होते हैं। शान्त और निर्वाणप्राप्त होते हैं। आस्रव (चित्तमल) और मनकी गांठोसे हीन होते हैं। शोक दूर किये निर्लेप वैसे होते हैं, जैसे पानीसे खाली कांसेकी कटोरी, विना मलकी शंख। वे जीवकी भांति अव्याहतगति, आकाश की भांति निरवलंव, वायु की भांति अवद्ध, शरद्कालके जलकी भांति शुद्धहृदय, कमलपत्र की भांति निर्लेप होते हैं। वे कछवेकी नाई गुप्त-इन्द्रिय, पक्षीकी नाई मुक्त, गेंडेके सींग की नाई अकेले, कुंजरकी नाई निर्भय, सांण्डकी नाई दृढ, सिंहकी नाई दुर्धर्ष, मंदर (पर्वत) की नाई अकम्प्य, सागरकी नाई गम्भीर, चन्द्रमाकी नाई सोम्य प्रकृति, सूर्यकी नाई दीप्त तेजवाले, स्वभावसे सोने जैसे निर्मल, वसुन्धराकी नाई सव सहनेवाले होते हैं। अच्छे होमे अग्नि जैसे तेजसे जल प्रकाश रहते हैं।

उन भगवानोंको कोई प्रतिवंध (रुकावट) नहीं। वे प्रतिवंध चार प्रकारके कहे गये हैं। जैसे अँडज (पक्षी), पोतक (पशु वच्चे), अवग्रह (शयनासन आदि) और प्रग्रह (बिहार आदि)। जिस-जिस दिशामें जाते हैं, उस-उस दिशामें प्रतिवंध रहित, शुचिभूत, हल्के रूपमें, गांठ हीन, संयम और तपसे भावना करते विहरते हैं।

उन भगवानोंकी ऐसी जीवनयात्रा होती थी। जैसे एक दिनके वाद

भोजन करनेवाले, दो०, तीन०, चार०, पांच०, छ०, सात०, आठवें,० दसवें०, वारहवें०, चौदहवें०, अर्धमासिक, द्विमासिक,० त्रैमासिक०, चातुर्मासिक०, पंचमासिक०, छ मासिक भोजन ग्रहण करते। फिर कोई, भिक्षाको हांडीसे निकाले अन्नको लेते, कोई रक्खे को, निकाले-रक्खे दोनों को, प्रान्तमें लेनेवाले, प्रान्तमें न लेनेवाले, अन्तमें लेनेवाले, रूखाहारी, अनेक घर-आहारी, न भरे हाथ मिलके आहारी, उससे उत्पन्न सम्पर्कके आहारी, देखेके आहारी, न देखेके०, पूछके०, विना पूछे०, (दे० अनुत्तरोपपातिक अंग ६) तुच्छ भिक्षा०, अभिक्षा०, अज्ञात०, समीपस्थ०, संख्यासे दत्त०, परिमितग्रा ा०, होते हैं। वे होते हैं शुद्धाहार, अन्ताहार, प्रान्ताहार, अरसआहार०, विरस०, रूक्ष०, तुच्छ०। वे अन्तजीवी, प्रान्तजीवी, होते। कोई आयंविल. कोई दोपहर वाद खानेवाले, और कोई निर्विकृतिक-मीठे, चिकने आहारके त्यागी होते हैं। वे मद्य-मांस कतई नहीं खाते। न वहुत स्वाद लेते,। वे कायोत्सर्गस्थ, प्रतिमा-स्थानसे युक्त, उकुडू-आसनवाले,। पालथी वाले, वीरासन वाले, दण्डवत् आसनसे, टेढे काटसे आसनवाले। वह विना ढँके शरीर वाले, गतिहीन चित्तवाले होते हैं। वे न खुजलाते न थूकते। ० (औपपातिक सूत्रमें आये प्रसंग अनुसार यहां भी पाठ)। केश-दाढी-रोम नखको सजाते नहीं। सारे गात्रके सँवारने से मुक्त होते।

वे इस विहारसे विहरते वहुत वर्षों तक श्रमण सम्वन्धी दीक्षाका पालन करते। वाधा उत्पन्न होने या न होनेपर भी वहुतसे दैनिक आहार छोड देते। अन्न छोडकर वहुतसे भोजनोंका अनशनसे विच्छेद करते हैं। अनशनसे विच्छेद करके उस पदार्थको प्राप्त करते हैं, जिसके लिये जिन-कल्पभाव, स्थविरकल्पभाव होना, मुण्ड होने, स्नान त्याग, दतुवन छोडना, छत्ता छोडना, जूता छोडना, भूमिशय्या, तख्ते की या काठकी शय्या, केश लुंचन, ब्रह्मचर्यवास, भिक्षार्थ पर-घर-प्रवेश, मिलते-न-मिलते मान-अपमान, अवहेलना, निन्दना, खुनसाना, गर्हणा तर्जना, ताडना, नाना प्रकारके ग्रामके कुवचनके कांटे, अप्रिय लगनेवाले, वाईस प्रकारके परिषह-

उपसर्ग-कष्ट-बाधायें सहे जाते हैं।

उस अर्थकी आराधना पूरा कर, अन्तिम सांससे अनन्त, अनुपम, आघात-हीन, निरावरण, पूर्ण, सम्पूर्ण (परिपूर्ण), केवल वर ज्ञान दर्शनको उत्पादित करते हैं। उसके बाद सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होते, परि-निर्वाण प्राप्त कर सारे दुःखोंका अन्त करते हैं।

कोई एक (जन्म) में भयत्राता जिन हो जाते हैं। दूसरे पूर्व-कर्मके बचे रहनेसे समय पा मरकर किसी एक देवलोकमें देवता बन पैदा होते हैं। वे (देवता,) जैसे…महा-महा ऋद्धिक, महा-द्युतिक, महापरा-क्रमी, महायशस्वी, महाबल, महानुभाव, महासुख। वे वहां महर्द्धिक ० होते हैं। वे होते हैं…हार-विराजित वक्षवाले, कंकण, केयूर सहित भुजा वाले, अंगद-कुण्डल से भ्राजते कपोल-कर्ण वाले, विचित्र-हस्त भूषण वाले, विचित्र माला, मोर और मुकुट वाले, सुन्दर गंध उत्तम वस्त्र पहनने वाले, अच्छे श्रेष्ठ माला-लेपन धारी, चमकते शरीर वाले, लंब लटकते वन माला धारी। वे दिव्य रूपसे, दिव्य वर्णसे, दिव्य गन्धसे, दिव्य स्पर्शसे, दिव्य संघातसे, दिव्य आकारसे, दिव्य ऋद्धिसे, दिव्य द्युतिसे, दिव्य प्रभासे, दिव्य अर्चासे, दिव्य तेजसे, दिव्य लेश्याओं (सत्स्वभावों) से, युक्त हो दशों दिशाओंको उद्योतित, प्रभासित, करते विचरते हैं। वे गति में कल्याण (सुन्दर), स्थितिमें कल्याण, भविष्य में भद्र होंगे।

यह स्थान आर्य ० सर्व दुःख नाशका मार्ग, पूर्णतया सम्यग् सुसाधु है।

द्वितीय धर्मपक्ष स्थानका विभंग ऐसे कहा गया ॥३८॥

८ पाप-पुण्य-मिश्रित

(६७३) अब तीसरे मिश्रक स्थानका विभंग कहा जाता है। यहां पूर्वमें कोई मनुष्य होते हैं ० साधु। वे स्थूल प्राणिहिंसासे विरत होवे हैं ०। और जो दूसरे उस तरहके सदोष न बोधिक कर्म-समारंभ पर

प्राणको परिताप किये जाते हैं, उनमें से भी किसी किसी से विरत नहीं होते हैं। जैसे कि जो श्रमणोंके उपासक होते हैं, वे जीव-अजीव-पुण्य-पाप-आस्रव-संवर-निर्जरा-क्रिया-अधिकरण-बंध-मोक्षको जानते हैं। वे विना किसीकी सहायतासे भी किसी देव-असुर-नाग-सुपर्ण-यक्ष-राक्षस-किन्नर-किम्पुरुष-गरुड-गन्धर्व-महाउरग-आदि देवगणों द्वारा, निर्ग्रन्थ धर्म वचनसे स्खलित नहीं किये जा सकते। इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन (जैन-आगम) में शंका-रहित, कांक्षा-रहित, विचिकित्सा-रहित हैं, वह यथार्थको लाभ किये, ग्रहण किये हैं। निश्चितार्थ अवगत-अर्थ हैं। अस्थि-मज्जाके प्रेममें भी अनुरक्त हैं। वह मानते हैं—आवुसो, यह जो निर्ग्रन्थ प्रवचन है, यह परमार्थ है, बाकी बेकार है, वे स्फटिकसे शुद्ध मन वाले, खुले द्वार वाले, विना संमतिके किसीके अन्तःपुर (गृह) में प्रवेश करनेवाले नहीं होते। महीनेकी चतुर्दसी, अष्टमी, पूर्णिमामें परिपूर्ण उपोसथ(प्रौषध-उपवास)को अच्छी तरह पालन करते हैं। निर्ग्रन्थ श्रमणोंको अनुकूल-वांछनीय-अन्न-पान-खाद्य-स्वाद्य-वस्त्र-परिग्रह-कंबल-पैरपोंछना-औषध-भेषज्य-पीढा-तख्ता-शय्या-विस्तरेको प्राप्त कराते हैं। बहुतसे शीलव्रत-गुणव्रत, त्याग-प्रत्याख्यान-पौषध-उपवास द्वारा ग्रहणकी रीतिके अनुसार तपकर्मोंसे आत्मा को शुद्ध करते विहरते हैं।

वे इसप्रकारके विहारसे विहरते बहुत वर्षोंतक श्रमणोपासक दीक्षाओंको सेवन करते हैं। बहुतसे भोजनोंका प्रत्याख्यान-त्यागकर अनशनसे खाद्य-विच्छेद करते हैं। बहुतसे भोजनोंको अनशनसे विच्छिन्न कर आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधि प्राप्त हो काल पा, मर कर किसी एक देवलोकमें देवता होकर पैदा होते हैं। जैसे महर्द्धिकोंमें ०।

यह मिश्रक-स्थानका विभंग ऐसे कहा गया।

९, अरति-विरति

(६७४) अ-रतिको लेकर बाल (मूढ) कहा जाता है, विरतिको लेकर पण्डित कहा जाता है। विरति-अरति ले कर बाल-पण्डित कहा जाता

है। सो जो वहां अविरति है वह स्थान (वस्तु) आरम्भ (हिंसा) का स्थान है, अनार्य० सब दुःखके मार्गका नाश न करनेवाला बे-ठीक और अ-साधु (बुरा) है। जो वह सब प्रकारसे विरति प्राप्त है, यह स्थान है, न आरम्भका स्थान, आर्य ० सब दुःख नाशक मार्ग, बिल्कुल ठीक और भला।

वहां जो ये सब तरह विरति-अविरति हैं, यह स्थान आरम्भ और न आरम्भका स्थान है। यह स्थान आर्य० सब दुःखनाशका मार्ग, बिल्कुल ठीक और अच्छा है ॥३९॥

१० दूसरे मत

(६७५) ऐसे अनुगमन करते इन दोनों स्थानों में सभी मार्ग आते हैं, जैसे धर्ममें या अधर्ममें, उपशान्तमें या न-उपशान्तमें। वहां जो प्रथम अधर्ममें-स्थानका विभंग ऐसे कहा गया; वहां तीनसौ तिरसठ प्रवादुक (मत-प्रवर्तक) होते हैं, यह कहा गया है, जैसे कि क्रिया-वादियोंका, अक्रिया-वादियोंका, अज्ञान-वादियोंका, विनय-वादियोंका। वे भी मोक्षकी बात करते हैं। वह भी श्रावकोंको उपदेशते हैं। वे भी वक्ता हो भाषण करते हैं ॥४०॥

११, प्रवादुक

(६७६) ये प्रावादुक धर्मोके आदि कर्ता हैं। वे नाना प्रज्ञावाले, नानाछंद वाले, नाना शील०, नाना दृष्टि०, नाना रुचि०, नाना आरम्भ०, नाना अध्यवसानसे युक्त हैं। वे एक बडी मंडली बांधकर सभी एक जगह बैठते हैं। तब एक पुरुष आगवाले अंगारों की भरी हुई अंगीठीको लोहेकी संडासीसे पकड कर उन सारे प्रावादुकोंके धर्मोके आदिकारों को नाना-प्रज्ञा०, से यह कहे—हे प्रवादुको०, नाना अध्यवसाययुक्तो, इस आग वाली० को एक-एक मुहूर्त संडासीके विना पकडें तो। न सण्डासीको पकडें, न अग्निस्तम्भ करें, न साधर्मिक (वैयावृत्य) करें। सीधे मोक्षपरायण हो, विना मायाके हाथ पसारें।

यह कहकर वह पुरुष उस अंगारोंसे० भरी पात्रीको० संडासीसे पकडकर उनके हाथोंमें गिरा दे। तब वे प्रावादुक० हाथ समेटते हैं। तब वह पुरुष० कहता है—हे प्रावादुको,० क्यों तुम हाथ को समेट रहे हो?

—हाथ हमारा जल जायगा।

—जलने से क्या होगा? दुःख मानकर हाथ समेटते हो। यह वो तुना है, यह प्रमाण है, यह समवसरण है। प्रत्येककी तुला० प्रमाण० समवसरण (समुच्चय)।

वहां जो श्रमण-ब्राह्मण ऐसा कहते हैं ० निरूपण करते हैं : सारे प्राणी,० सारे सत्व मारने चाहिये। आज्ञापित० परिगृहीत, परितापित, क्लेशित, उपद्रवित, करने चाहिये। वे आगेके छेदन, आगेके भेदन, ० आगेके जाति-मरण-योनि-जन्म-सार-पुनर्जन्म-गर्भवास-संसार प्रपंच में कष्ट भागी होंगे। वे बहुतसे दण्डों, बहुतसे मुण्डनों० पानीमें डूबने, माता वधों-के, मातृमरणोंके, पिता० भ्राता० भगिनी०० बहूके मरणोंके भागी होंगे। दारिद्र्यके, दुर्भागोंके, अप्रियोंके सहवासोंके, प्रियवियोगोंके, बहुतसे सन्ताप और दौर्मनस्यको भोगेंगे। वे अनन्त संसार रूपी वनमें बे-अन्त घूमेंगे। वे सिद्धि और बोध न पायंगे। न दुःखोंका नाश ही कर सकेंगे।

यह सबके लिये तुल्य (न्याय) है। प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी निश्चित है कि, दूसरोंको तकलीफ देने वाले चोर-व्यभिचारी आंखों के आगे दण्ड भोगते हैं। आगमका सार भी ऐसा ही है। सबके लिये न्याय बराबर है,

पर जो सन्त-महात्मा यह कहते देखे जाते हैं—सब प्राण-भूत-जीव और सत्वको कभी न मारे, न मरवावे, ना मारने की अनुज्ञा करे। जबरदस्ती उन्हें गुलाम न बनावे, न दुःख दे, न उनपर जुल्म करे न कोई उपद्रव करे। वे लोग आगे अंगच्छेद आदिका दुःख न पायंगे। जन्म-जरा-

मरण वाली योनियोंमें उत्पन्न न होंगे। गर्भवास और संसारके अनेक भांतिके दुःखोंके पात्र न होंगे। वे बहुतसे दण्ड-मुण्डनों और दुःख दौर्मनस्यसे छूटेंगे ॥४१॥

(६७७) इन उपरोक्त बारह क्रिया-स्थानमें वर्तमान, न सिद्ध हुये, न मुक्त हुये, न परिनिर्वाण प्राप्त हुये, न सब दुःखोंका अन्त किये न करते हैं, न करेंगे। इस तेरहवें क्रिया-स्थानमें वर्तमानमें जीव सिद्ध हुये, बुद्ध हुये० सब दुःखोंका अन्त किये, करते हैं और करेंगे।

इसप्रकार वह भिक्षु आत्मगुप्त, आत्म-योग, आत्म, पराक्रम आत्म-अनुकम्प, आत्म.निस्सारक, (अपने) को ही पापकर्मों से रोके यह मैंकहता हूं ॥४२॥

॥ दूसरा अध्ययन समाप्त ॥

अध्ययन ३

आहार शुद्धि

(६८०) आवुस, मैंने सुना, उन भगवान् (महावीर) ने ऐसा कहा।

आहार-शुद्धि (०परिज्ञान) अध्ययन है, जिसका यह अर्थ है: यहां कोई पूर्वमें ०। सर्वतः सर्वत्र लोकमें चार वीज-समूह (० काय) ऐसे कहे जाते हैं, जैसे कि, (१), अग्रवीज (आम आदि पेड़ उपरिभागमें अपने वीज रखने वाले) (२), मूलवीज, (अदरक), (३), पर्व वीज (गन्ना आदि) (४) स्कन्ध वीज (कलम) से होने वाले। उनसे यथायोग्य अवकाश मिलनेपर बहुतसे प्राणी पृथिवी योनिके, पृथ्वीसे उत्पन्न, पृथ्वीसे उगे। कर्मके वस, कर्मके कारण वहां उगे, नाना प्रकारकी योनिवाली पृथ्वी पर पेड़के तौर पर (पैदा) होते हैं। वे जीव नाना योनि वाली पृथिवियोंका रस पीते हैं। वह जीव वनस्पति, पृथिवी शरीर

जल-शरीर, अग्निशरीर, वायु-शरीर, वनस्पति-शरीरका आहार करते हैं: नाना-प्रकारके जंगम-स्थावर प्राणियोंके शरीरको निर्जीव करते हैं। वह ध्वस्त शरीर पूर्व खाया, छाल निकाला, स्वरूपसे विकृत किया (गया) होता है। और भी उन पृथ्वीयोनिक वृक्षोंके शरीर नानारंग-नानागन्ध-नानारस-नानास्पर्श-नाना आकृतिवाले, नाना प्रकारके शरीर-अंशसे विकसित (होते) हैं। वे (वनस्पति जैसे) जीव, कर्मके आधीन (ऐसे) होते हैं, यह कहा गया ॥१॥

(६८१) पहले कहा गया। यहां कोई-कोई सत्व वृक्षयोनिक० पेडके तौर पर (पैदा) होते है। वे ० त्रस-स्थावर प्राणियोंके शरीरको निर्जीव करते हैं ०। नाना विधि शरीर-अंशको विकारी करते हैं।

वे जीव कर्मके आधीन होते हैं। यह कहा गया ॥२॥

(६८२) अब और एक वाक्य पहले कहा गया :

यहां कोई-कोई सत्व ० पेडके तौर पर पैदा होते हैं। ० प्राणियोंके शरीरको निर्जीव करते हैं। यह ध्वस्त शरीर ० विपरिणत हो रूप-सात् कर लिये जाते हैं। उन पृथिवी योनिके पेडोंके शरीर नाना रंगके ० होते हैं।

वे जीव कर्मके आधीन होते हैं। यह कहा गया ॥३।

(६८३) एक और पहले कहा गया :

यहां कोई सत्व ० पेडोंमें मूलके रूपमें, कन्द०, स्कन्ध०, छाल०, सार०, अंकुर०, पत्र०, पुष्प०, फल०, बीजके रूपमें परिणत होते हैं। वे जीव० रस पीते हैं०, प्राणियोंके शरीरको निर्जीव करते हैं। वह ध्वस्त शरीर० रूपमें विलीन कर लिये जाते हैं। ० उन वृक्षयोनिकोंके मूल० बीजोंके शरीर नाना रंग ० शरीरांश विकारित होते हैं।

वे जीव कर्मके आधीन पैदा होते हैं। यह कहा गया ॥४॥

(६८४) ० और भी पहले कहा गया।

कोई-कोई सत्व (प्राणी) वृक्षयोनिक० रस पीते है। शरीरको ०

रूप में विलीन करते हैं। उन वृक्षयोनिक वृक्षोंपर अध्यारूढ* (अनुशायी) के तौर पर होते हैं। वे जीव ० रस पीते हैं। रूपमें विलीन ०। उन वृक्षोंपर अध्यारूढ वृक्षयोनिक अध्यारूढक शरीर नाना रंग ० के होते हैं। यह कहा गया ॥४॥

(६८५) ० पहले कहा गया। यहां कोई प्राणी अध्यारूढ (बंदा) योनिक अध्यारूढसे पैदा ० कर्मके कारण वहां पहुंच वृक्षयोनिक अध्यारुढों पर अध्यारुढके तौर पर पैदा होते हैं। वे जीव ० रूपमें विलीन ०। उन अध्यारुह योनिक अध्यारुढोंके शरीर नाना शरीर वर्ण० के होते हैं। यह कहा गया ॥६॥

(६८६) ० पहले कहे गये :

कोई प्राणी अध्यारुह योनिक, अध्यारुहसे उत्पन्न ० कर्मके कारण वहां अध्यारुहयोनिकोंमें कर्म के कारण उगे। अध्यारुहके तौर पर पैदा हुये० रस पीते हैं। ० शरीरको० रूपमें विलींन ०। अध्यारुहोंके शरीर नाना वर्णके होते हैं ।० ७॥

(६८७) यहां कोई प्राणी अध्यारुह योनिक अध्यारुहसे उत्पन्न ० कर्मके कारण वहां उगे ० मूलके तौर पर बीजके तौर पर पैदा होते हैं। वे ० रस पीते हैं। ० उनके ० बीजोंके शरीर नाना वर्ण होते हैं।० कहे गये ॥८॥

(६८८) ०। ० पृथ्वीयोनिक ० नानाविध योनियोंवाली पृथिवियों का रस ०। वे जीव उन नाना विध योनिवाली पृथिवियोंपर तृणके तौर पर पैदा होते हैं। वे ० पृथिवियोंके रस को पीते हैं। वे जीव कर्मके वश पैदा होते हैं ० ॥९॥

(६८९) इस प्रकार तृणयोनिक तृणोंमें तृणके तौर पर पैदा होते, तृण-शरीरका भी आहार करते हैं०। इस प्रकार तृणयोनिक तृणोंमें मूलके तौर

---

* वृक्षोंपर दूसरी जातिके उगनेवाले पौधे वंदा, Orchid आदि।

पर, ० बीजके तौर पर पैदा होते हैं० । वे जीव ० । ऐसे ही औषधियोंमें भी चार ही कथनीय हैं । हरितोंमें भी चार कथनीय हैं ॥१०॥

(६९०) ० । यहां कोई प्राणी, पृथिवियोनिक, पृथिवीसम्भव० कर्मके कारण वहां उत्पन्न नानाविधि योनिवाली पृथिवियोंमें आर्य (वनस्पति नाम) के तौर पर वाय०, काव०, कूहण०, कंदुक०, उपनिहीक०, निवेहणिक०, सच्छत्र०, गुच्छी०, वासाणि०, कूर०, पैदा होते हैं । वे रस पीते हैं । वे भी जीव पृथिवीशरीरका आहार करते हैं । और भी उन पृथिवीयोनिक आर्य० कूरोंके शरीर नाना वर्ण ० । एक ही यहां कथनीय है, बाकी तीन नहीं । और भी पहले कहा गया ।:

० कोई प्राणी उदक(जल)योनिक, उदकसम्भव० कर्मके कारण वहां उत्पन्न नानाविध योनिवाले उदकोंमें वृक्षोंका रस पीते हैं । वे जीव पृथिवीशरीरका आहार करते । ० ० उन ० वृक्षोंके शरीर नाना वर्ण ० । जैसे पृथिवीयोनिकों के चार भेद, वैसे ही अध्यारुहोंके भी, तृणों-औषधी-हरितोंके भी चार भेद कहे गये हैं ।

० । कोई प्राणी उदकयोनिक ० उदकोंमें उदकके तौर पर अवक ०, पनक ०, सेवार ०, कलंबुक ०, हड ०, कसेरु ०, कच्छभाणि ०, उत्पल ०, पद्म ०, कुमुद ०, नलिन ०, सुभग ०, सुगंधिक ०, पुण्डरीक०, महापुण्डरीक ०, शतपत्र ०, सहस्रपत्र ०*, ऐसे ही कल्हार-कोदनके तौर पर, अरविंद ०, तामरस ०, भिस-भिसमुणाल ०, पुष्कर ०, पुष्कराक्ष, के तौर पर पैदा होते । वे जीव पृथिवीका शरीर आहार करते ० । उनके ० नाना वर्णके ० यहां एक ही आलाप कथनीय है ॥११॥

(६९१) ० । कोई प्राणी पृथिवीयोनिक वृक्षों में वृक्षयोनिक वृक्षोंमें, वृक्षयोनिक मूलोंमें, ० बीजोंमें, वृक्षयोनिक अध्यारुहोंमें, अध्यारुहयोनिक अध्यारुहोंमें, अध्यारुहयोनिक मूलोंमें, ० बीजोंमें, पृथिवीयोनिक तृणोंमें,

---

* कमलकी जातियां ।

तृणोंमें, तृणयोनिक मूलोंमें, ० बीजोंमें। ऐसे ही औषधियोंमें भी तीन भेद, पृथिवीयोनिक आर्योंमें ० कूरोंमें, उदकयोनिक वृक्षोंमें, वृक्षयोनिक वृक्षोंमें, वृक्षयोनिक मूलोंमें, ० बीजोंमें, ऐसे ही अध्यारुहोंमें तीन भेद, तृणोंमें भी तीन भेद। हरितोंमें भी तीन, उदकयोनिक में भी, अवकोंमें भी ०, पुष्करोंमें, जंगम प्राणिके तौर पर पैदा होते हैं। वे जीव उन पृथिवीयोनिक, उदकयोनिक, वृक्षयोनिक, अध्यारुहयोनिक, तृण ०, औषधि ०, हरित ०, अध्यारुहवृक्षों, तृण, औषधि, हरित, मूल ० बीजों, आर्यो, ० पुष्कराक्षोंके रसको पीते हैं। वे जीव पृथिवी शरीरका आहार करते हैं, और भी उन वृक्षयोनिक ०, बीजयोनिक ०, पुष्कराक्षयोनिक जंगम प्राणियोंके नाना वर्ण ० ॥१२॥

(६९२) ० पहले कहा गया :

नानाविध मनुष्यों · आर्यों, म्लेच्छों, जैसे कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक, अन्तरद्वीपवासियों, आर्यों, म्लेच्छों, उनके यहां बीजके अनुसार, अवकाशके अनुसार, स्त्री और पुरुषका कर्मसे बनी योनिमें मैथुन-संबंधी संयोग से उत्पन्न होता है। वे होनेवाले जीव दोनोंके स्नेहका आहार करते हैं। वहां जीव पुरुष, स्त्री या नपुंसकके तौर पर पैदा होता है। वे जीव माताके रज, पिताके वीर्य, दोनोंके मिश्रित कलुष-किल्विष(मल)का आहार करते हैं। उसके बाद वह माता नाना प्रकारके सरस आहार खाती है। उसके उससे एक अंशसे (गर्भस्थ) जीव ओज ग्रहण करते हैं। क्रमशः बढकर, परिपाकको प्राप्त हो उस शरीरसे निकलते। कोई स्त्री-भावको पैदा करते, कोई पुरुषभावको, कोई नपुंसकभावको। वे बाल जीव माताके क्षीर-घी का आहार करते हैं। क्रमशः बढ भात, दाल और फिर जंगम-स्थावर प्राणियोंको खाते हैं। पृथिवीशरीरको ० रूपमें परिणत करते हैं। और भी उन ० आर्यो, म्लेच्छोंके शरीर नानावर्णके होते हैं ० ॥१३॥

(६९३) ०। नानाविध जलचरोंका···जैसे, मछलियों, सोंसो ०, ···उनके बीजके अनुसार, अवकाशके अनुसार, पुरुषका कर्मकृत ०। ०

ओजका आहार करते हैं। क्रमशः वढ ० कायासे निकल कोई अंडेके, कोई पोतके रूपमें जनमते हैं। उस अण्डेके फूटनेपर कोई स्त्री पैदा करते, कोई पुरुप और कोई नपुंसक। वे जीव(शिशु) होते जलके रसको पीते हैं। क्रमशः वढ वनस्पतियोंको, जंगम-स्थावर प्राणियोंको खाते हैं। ० और भी नानाविध जलचर, पंचेन्द्रिय,तिर्यग्योनिक०। मछली सोंसोंके शरीर नानावर्ण ०॥१४॥

(६६४) ०। नानाविध चौपाये, स्थलचर, पंचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक··· जैसे, एक खुर वाले, दो खुर वाले, कोई गैंडेसे पैर वाले, नख युक्त पैर वाले, उनमें बीजके अनुसार पेटमें अवकाशके अनुसार स्त्री और पुरुषके कर्मसे किये मैथुन सम्बन्धसे संयोग होता। जन्मने वाले (प्राणी) दोनों रसको लेते हैं। वहां जीव स्त्री या पुरुषके तौर पर पैदा होते हैं। वे जीव माताके रज और पिताके वीर्यको लेते हैं, जैसे मनुष्योंमें कोई पुरुष जन्मते हैं, कोई स्त्री, कोई नपुंसक। वे जीव शिशु हो माताके क्षीर-घी का आहार करते। ० वे पृथिवी शरीर आहार करते ०। और भी उन नानाविध चौपाये ० नख सहित पैर वालोंके नानाविध शरीर ०॥१५॥

(६६५) नानाविध छातीसे सरकनेवाले उरःपुर स्थलचर, पंचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक-जैसे कि, साँप, अजगर, आशालिक, महोरग, उनके बीजानुसार ० स्त्री और पुरुष ० मैथुन ० कोई अण्डे जनते, कोई पोत (शिशु)। अण्डेके टूटनेपर कोई स्त्री ० वे जीव छोटे रहते वायुकायको खाते, क्रमशः बढ़ वनस्पति, जंगम-स्थावरको०। ० उन नानाविव ० महोरगोंके शरीर नानावर्ण, नाना गन्ध ०॥१६॥

(६६६) नाना भुजपर सरकते थलचर, पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक, जैसे···गोह, नेवले, सिंहण, सरट, सल्लक, सरघ, घरकोइली, विसम्भर, चूहे, मंगुस,पदललित,विल्ला,जोध और चौपाये—इनके बीजके अनुसार०, स्त्री-पुरुष ०, मैथुन ०। उन नानाविध ० गोहोंके ० शरीर नानावर्ण ०॥१७॥

(६९७) ० नानाविध आकाशचारी, पंचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक, जैसे ···रोमपक्षी, चर्मपक्षी, समुद्गपक्षी, विततपक्षी,···, उनके वीजके अनुसार ०। ये जीव छोटे रहते माताके शरीरके रसको खाते हैं। ०। ० उनके ० शरीर नानावर्ण। ०। ० ॥१८॥

(६९८) ०। यहां कोई प्राणी नानाविध योनिवाले, नानाविध सम्भव, नानाविध पैदा हुये हैं। वे उस योनिवाले, उस योनिसे उद्भूत, उससे जनमे, कर्मवश, कर्मके कारण, वहां पैदा हुये। नानाविध जंगम-स्थावर पुद्गलोंके शरीरोंमें, सजीव या अजीव शरीरोंमें गुंथेसे रहते हैं। वे जीव उन नानाविध त्रस-स्थावर प्राणियोंके रसको पीते हैं। ० उनके० शरीर नानावर्ण ०। इस प्रकार कुरूप जन्मनेवालेके तौर से चर्मके कीटोंके रूपमें ० ॥१९॥

(६९९) ०। ० कोई प्राणी नानाविध योनिवाले ० कर्मके कारण० उत्पन्न ०। नानाविध जंगम-स्थावर प्राणियोंके सजीव निर्जीव शरीरोंमें (पैदा होते) वह शरीर वायु-रचित, वायु-संगृहीत तथा वायु-परिगृ··· या उपरि वायुमें ऊपर जानेवाला, निचली वायुमें नीचे जानेवाला, तिरछी वायुमें तिर्छे जानेवाला होता है। जैसे कि, ओस, वर्फ, कुहरा, ओला, हरतनुक, शुद्धजल···, वे जीव उन नानाविध त्रस-स्थावर प्राणियोंके रसको खाते हैं। वे जीव पृथिवी शरीर को खाते हैं ०। उनके शरीर नानावर्ण ० ॥२०॥

०। कोई प्राणी उदकयोनिक ० कर्मके कारण, उत्पन्न जंगम-स्थावर योनिक उदकोंमें उदकके तौर पर पैदा होते। वे जीव उन ० उदकोंके रसको पीते हैं। उनके नाना शरीर नानावर्ण ०।

कोई प्राणी उदकयोनिक ० कर्मके कारण, उदक योनियोंमें उदक (जल) के तौर पर पैदा होते। वे जीव उन उदकयोनिकोंके उदकोंके रसको पीते हैं। वे जीव पृथिवीशरीरको खाते हैं ०। ० शरीर

नानावर्ण । ० । कोई प्राणी ० उदकयोनिक उदकों में जंगम प्राणीके रूपमें पैदा होते । ० उदकोंका रस पीते । वे जीव पृथिवी शरीरको खाते हैं ० । उन उदकयोनिक जंगम प्राणियोंके शरीर नाना-वर्ण ० ॥२१॥

(७००) ० । कोई प्राणी नानाविध ० योनिक ० के कारण वहां उत्पन्न, नानाविध जंगम-स्थावर प्राणियोंके सजीव या निर्जीव शरीरोंमें अग्निकायके तौर पर पैदा होते । वे जीव उन नानाविध जंगम स्थावर प्राणियोंके रसको पीते, वे जीव पृथिवीकाय शरीरको खाते हैं । ० उनके नानावर्ण ० ।

(बाकी तीन भेद उदक जैसे यहां भी ०) ।

० । ० । कर्मके कारण यहां पैदा हुये ० नानाविध जंगम-स्थावरोंके शरीरमें सजीव, निर्जीव शरीरमें वायुशरीरवाले हो पैदा होते । ० (अग्निकी तरह चार भेद कहने चाहिये) ॥२२॥

(७०१) ० । कोई प्राणी ० कर्मके कारण वहां पैदा होते, नाना-विध जंगम स्थावर प्राणियोंके सजीव, निर्जीव शरीरोंमें, पृथिवीके तौर पर कंकडी या बालुकाके तौर पर पैदा होते ।

(यह गाथायें) "पृथिवी, और कंकडी, बालू, पत्थर, शिला, और लवण । लोहा, रांगा, तांबा, सीसा, रूपा, सोना और हीरा ॥१॥

हरताल, हिंगुलु, मैनसिल, शशक, सुरमा, मूंगा । अबरक पत्र और अबरक चूर्ण, बादरकाय और मणिविधान ॥२॥

गोमेदक, रजत, अंक, स्फटिक, और लोहित नामक रत्न । पन्ना, मसारगल्ल, भुजमोचक, और इन्द्रनील (नीलम) ॥३॥

चन्दन, गेरू, हंसगर्भ, पुलक, सौगंधिक, जानने चाहिये । चन्द्रप्रभ, वैडूर्य, हीरा, जलकान्त और सूर्यकान्त (भी) ॥४॥

इनके बारेमें ये गाथायें कहनी चाहिये । ० सूर्यकान्त होते । वे जीव उन नाना जंगम-स्थावर प्राणियोंके रसको पीते हैं। वे पृथिवी शरीरको खाते हैं। ० उन जंगम-स्थावर योनिक पृथिवियों ० सूर्यकान्तके शरीर नानावर्ण ० । (बाकी तीन भेद उदकों जैसा यहां भी) ॥२३॥

(७०२) ० । सारे प्राणी, सारे भूत, सारे जीव, सारे सत्व नानाविध योनिवाले, नानाविध उत्पन्न, शरीरयोनिक, शरीरसम्भव, शरीरोत्पन्न, कर्मवश, कर्मके कारण, कर्मगतिवाले, कर्मस्थितिक, कर्मके द्वारा ही (आवागमनके) चक्करमें पडते हैं।

(७०३) सो इसे जानो। जानकर आहारसे रक्षित, सहित, समता-सहित हो सदा प्रयत्न करते रहो, यह कहता हूँ ॥२४॥

॥ तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

अध्ययन ४

प्रत्याख्यान

(७०४) आवुसो, मैंने सुना, उन भगवानने यों कहा।

यहाँ प्रत्याख्यान नामक अध्ययन है, जिसका अर्थ बतलाया है··· जीव-आत्मा, अप्रत्याख्यानी (न दुष्कर्मत्यागी) भी होता, आत्मा दुष्कर्म-कुशल भी होता, आत्मा झूठमें अवस्थित भी होता, आत्मा पूर्ण मूढ-मिथ्यात्वी भी होता, पूर्ण-सुप्त (अज्ञानी) भी होता, आत्मा विचारहीन-मानसिक-वचन वाला भी होता, विचारहीन कायिक वचनवाला भी होता, आत्मा विना रोक-विना त्याग के पाप कर्मोंका करने वाला होता, (पापमें) सक्रिय, असंयत, पूर्ण पापकर्मा, पूर्णतया बाल, एकान्त सुप्त हो, वह बाल विना विचारे मन-वचन-कायवाला हो स्वप्न देखनेकी क्षमता भी न रखते पापकर्म करता है ॥१॥

(७०५) इस पर शिष्य प्रज्ञ (आचार्य) को कहता है···

···पापी मनके न रहते, पापी वाणीके न रहते, पापी कायके न रहते न मारते न मनन करते, विचार-रहित मन-वचन-कायवाले, स्वप्नको भी न देख सकने वाले से पापकर्म नहीं किया जा सकता।

···किस कारण ऐसा ?

शिष्य···कहता है···पापी मनके विना मन-सम्बन्धी पापकर्म किया जाये, पापी वचनके विना वचन सम्बन्धी पापकर्म किया जाय, पापिनी कायाके विना काय-सम्बन्धी पापकर्म किया जाये (यह नहीं हो सकता)।

(आचार्य)मनसे युक्त, विचार-सहित मन-वचन-काया सम्बन्धी

वचनवालेका स्वप्न देखनेवाले के द्वारा, ऐसे गुणस्वभावको पाप-कर्म किया जा सकता है।

फिर शिष्य कहता है कि वहां जो ऐसा कहते हैं···पापी मनके न होनेपर ० स्वप्न भी न देखनेवालेसे पाप कर्म किया जाता है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या बोलते हैं ॥२॥

(७०६). वहां (आचार्यने) प्रेरकसे पूछा कि,

···वह ठीक है, जो कि मैंने पहले कहा—पापी मनके न रहते ० स्वप्न भी न देखते पापकर्म किया जाता है।

···सो किस कारण ?

आचार्यने कहा···भगवानने छ जीवनिकाय(जीवसमूह)हेतु बतलाये हैं, जैसे कि, पृथिवीकाय से लगाकर त्रस(जंगम)कायिक तक। इन छ जीव निकायों द्वारा आत्मा अ-प्रतिहत पाप कर्मको प्रत्याख्यान किये विना सदा अतिशठ, व्यापाद(हिंसा)युक्त चित्तक्रिया वाला (होता है), जैसे कि हिंसा, ०,परिग्रह,क्रोध ०,मिथ्यात्वदर्शन(रूपी)शल्यमें (लगा) ॥३॥

(७०७) आचार्यने कहा—

···भगवानने बधिक(वधक)का दृष्टान्त दिया, जैसे कि, कोई बधिक(सोचता) है : गृहपति या गृहपति-पुत्र, राजा या राजपुरुषको, मौका पा घरमें घुसूंगा, मौका पा मार दूंगा। ऐसा वह बधिक उस गृहपति ० को मारूंगा, यह सोचता दिन या रात, सोता या जागता, शत्रुसा वना मिथ्यामें अव-स्थित सदा शठ, व्यापादयुक्त चित्तवाला क्या होता है ?

ऐसा कहे जाने पर समझकर शिष्यने कहा—हां (वह) बधिक है। आचार्यने कहा : जैसे यह बधिक उस गृहपति ० दिन-रात सदा शठ,

व्यापादचित्त क्रियावाला है, जैसे कि, हिंसामें ०, मिथ्यादृष्टि शल्यमें० । इस प्रकार भगवानने कहा । असंयमी, अविरत, अप्रतिहत प्रत्याख्यान पापकर्मवाला, पापसे सक्रिय, असंवर युक्त, पक्का क्रियावान्, पक्का मूढ विचारहीन मन-वचन-कायवाला स्वप्न भी न देखता(है, पर उसके द्वारा) पाप कर्म किया जाता है । जैसे वह वधिक सदा शठ, व्यापादचित्तयुक्त क्रियावाला होता है, वैसे ही मूढ सारे प्राणियों ० सारे सत्वोंमें से प्रत्येक को चित्तमें ले रात-दिन, सोता जागता ० व्यापादचित्त क्रियावाला होता है ॥४॥

(७०८) यह ठीक नहीं है, बहुतसे प्राणी हैं, जिन्हें शरीरके आकारसे उस आदमीने नहीं देखा, न सुना, न माना, न जाना । उनमें प्रत्येकको चित्तमें ले दिन-रात, सोता या जागता शत्रु हो ० नित्य शठ, व्यापाद-चित्तयुक्त क्रियावाला हो, जैसे कि हिंसामें ० मिथ्यादृष्टि (रूपी) शल्यमें ।

(आचार्य कहता है) वहाँ भगवान्ने दो दृष्टान्त बतलाये हैं,: संज्ञी (होश रखनेवाले) का दृष्टान्त, अ-संज्ञीका दृष्टान्त । संज्ञी दृष्टान्त क्या है ? जो ये संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त(जीव) हैं । इनके छ जीव-निकाय समूहको ले, जैसे पृथिवीकाय ० जंगमकायको लेकर, कोई पृथिवीकाय द्वारा काम करता, कराता भी है । उसको ऐसा होता है । इस प्रकार मैं पृथिवीकाय द्वारा काम करता हूं, कराता भी हूं । उसको ऐसा नहीं होता : अमुक-अमुक द्वारा वह इस पृथिवीकायसे काम करता है, कराता भी है । वह उस पृथिवीकाय द्वारा अ-संयमी, अ-विरत, अप्रतिहत-अप्रत्याख्यान पापकर्मवाला भी होता है, ऐसे ० जंगम कायोंमें भी कहना होगा । सो कोई छ जीवनिकायों द्वारा काम करता भी, कराता भी, उसको ऐसा नहीं होता : अमुक-अमुकके द्वारा वह उन छ जीवनिकायोंसे अ-संयत, अविरत, अप्रतिहत, अप्रत्याख्यान, पापकर्मवाला, जैसे कि हिंसामें ० मिथ्यादर्शनशल्यमें ॥५॥

(७०६) यह भगवानने कहा—असंयत, अविरत०स्वप्न भी न देखता पाप करता है। सो संज्ञी दृष्टान्त है।

कौन है असंज्ञी दृष्टान्त? जो ये अ-संज्ञी (न होश रखनेवाले) प्राणी हैं, जैसे कि—पृथिवीकायिक ० छठे (वनस्पतिकायके बाद असंज्ञी) त्रस काय वाले (जंगम) प्राणी हैं, जिनके पास न तर्क (शक्ति) है, न संज्ञा (होश) है, न संज्ञा-प्रज्ञा-वाणी है। न ही वे स्वयं कर सकते, न अन्यसे करा सकते, न करतेका अनुमोदन कर सकते। वे मूढ सारे प्राणों० सारे सत्वोंके दिन-रात, सोते-जागते शत्रु से हो मिथ्यामें अवस्थित ० मिथ्यादर्शन रूपी शल्य में हैं।

इस प्रकार ० नहीं मन, नहीं वाणी, प्राणियों० सत्वोंको दुखनेके तौर पर, शोक करने ०, झींकने० तेपने०, पिट्टन० परितापनके तौरपर वे दुखना ० परितापन, वध-बंधन, परिक्लेशोंसे न विरत होते हैं। इस प्रकार वे अ-संज्ञी सत्व भी रात-दिन हिंसामें (रत) कहे जाते हैं ० रात-दिन परिग्रहमें० मिथ्यादर्शन शल्यमें रत कहे जाते।

ऐसे ही सत्यवादी-सर्वयोनिक सत्व अ-संज्ञी होते हैं। अ-संज्ञी हो (दूसरे जन्ममें) संज्ञी होते हैं। संज्ञी या अ-संज्ञी होकर, वहां वे विना विवेक किये, विना हटाये, विना उच्छिन्न किये, विना अनुपात किये, अ-संज्ञी से संज्ञी योनिमें संक्रमण करते हैं, संज्ञी से असंज्ञीकायमें ०, अ-संज्ञिसे अ-संज्ञिककायमें ०। जो ये संज्ञी हैं, या असंज्ञी हैं, वे सारे मिथ्या आचरणवाले हैं। नित्य शठ-व्यापादक्रिया वाले, जैसेकि, हिंसामें ० मिथ्यादृष्टिशल्यमें।

इस प्रकार भगवान्‌ने कहा—असंयत, अ-विरत ० पूर्णमूढ़ ।० सो मूढ ० स्वप्न भी नहीं देखता, फिर भी पाप कर्म करता है ॥६॥

(७१०) (शिष्य ने पूछा) वह क्या करते, क्या कराते, कैसे संयत, विरत, पापकर्म त्यागी होता है?

(आचार्य ने कहा)—यहां भगवानने छ जीव-निकाय० योनि (हेतु)

वतलाये हैं. जैसे कि, पृथिवीकाय ० जंगम कायिक, । जैसे कि मेरे लिए अरुचिकर होता है, (यदि) डण्डेसे, हड्डीसे, मुक्केसे, ढले से, खोपड़ीसे पीड़ित करते ०, भगाते०, रोम उखाडने भर की भी हिंसासे किये दुःख-भयको मैं संवेदित (महसूस) करता हूँ। इसी तरह जानो, कि सारे प्राणी खोपडीसे कोंचे जाते, हने जाते, ताडित होते, ० तर्जित होते, हिंसाके दुःखको संवेदन करते हैं। ऐसा जानकर सारे प्राणियोंको न हनन करना चाहिये। यह धर्म ध्रुव-नित्य-शाश्वत है। लोकका (आधार) समझकर खेदज्ञ (तीर्थंकरों) ने इसे वतलाया।

इस प्रकार वह भिक्षु हिंसासे विरत ० मिथ्यादृष्टिसे विरत होये। वह भिक्षु न दतवनसे दांत धोये, न अंजन, न वमन न धूपन करे। वह भिक्षु अक्रिय, न हिंसक, न क्रोधी, ० न लोभी, उपशांत (पापसे निवृत्त) निर्वाण प्राप्त रहे।

यह भगवान्‌ने कहा—संयत, विरत, प्रतिहत, पापकर्मका त्यागी, अक्रिय-संवर (संयम) युक्त पूर्ण पण्डित(भिक्षु) है। यह में कहता हूं ॥७॥

॥ चौथा अध्ययन समाप्त ॥

——

अध्ययन ५

अन्-आगार (साधु)

(७११) आशुप्रज्ञ (पुरुष) इस वचन और ब्रह्मचर्य को लेकर, कभी इस धर्ममें अनाचार न करे ॥१॥

(७१२) इस (जगत्) को अनादि और अनन्त समझ, एकान्त नित्य या अ-नित्यकी दृष्टि (उसके बारेमें) न धारण करे ॥२।

(७१३) इन दोनों(चरम)स्थानोंसे(लोक)व्यवहार नहीं चल सकता । इन दोनों(चरम)स्थानों का आचरण नहीं करना, इसे जाने ॥३॥

(७१४) शास्ता (तीर्थंकर) उच्छिन्न हो जायेंगे, सारे प्राणी(एक दूसरेसे) अ-सदृश हैं, या सदा बंधन में पड़े(ग्रन्थिक)रहेंगे, यह एकान्तिक नहीं कहना चाहिये ॥४॥

(७१५) इन दोनों(चरम)स्थानोंसे(एकान्त धारणा हो तो) व्यवहार नहीं चल सकता, इन दोनों ० ॥५॥

(७१६) जो कोई छोटे प्राणी अथवा महाकाय प्राणी हैं, उनकी (हिंसासे) असमान वैर होता है, यह न कहे ॥६॥

(७१७) इन दोनों ० ॥७॥

(७१८) आधाकर्म (निमित्त करके बना) भोजन जो करते हैं, (वे) अपने कर्म (पाप) से लिप्त होते या उपलिप्त नहीं होते, दोनों नहीं कहना" यह जाने ॥८॥

(७१६) इन दोनों ०॥६॥

(७२०) यह भी न कहे कि जो यह स्थूल आहार, तथा कर्मगत (शरीर) हैं, सर्वत्र वीर्य (शक्ति) है या नहीं ॥१०॥

(७२१) इन दोनों ० ॥११॥

(७२२) लोक या अ-लोक नहीं है, यह ख्याल न लाये, लोक और अ-लोक (दोनों) हैं, यही ख्याल रक्खे ॥१२॥

(७२३) जीव और अ-जीव नहीं हैं, यह ख्याल नहीं रक्खे, जीव और अजीव हैं, ऐसा ख्याल रक्खे ॥१३॥

(७२४) धर्म और अ-धर्म नहीं, ० ॥१४॥

(७२५) बंध और मोक्ष नहीं है, यह ख्याल न रक्खे ।० ॥१५॥

(७२६) पुण्य या पाप नहीं है, ० ॥१६॥

(७२७) आस्रव (चित्तमल-कर्म आनेका मार्ग) या संवर(संयम) नहीं है, ० ॥१७॥

(७२८) वेदना (महसूस करना) और निर्जरा(कर्म नाश) नहीं है, ० ॥१८॥

(७२६) क्रिया या अक्रिया नहीं है, ० ॥१६॥

(७३०) क्रोध या मान नहीं है, ० ॥२०॥

(७३१) माया (छल) या लोभ नहीं है, ० ॥२१॥

(७३२) प्रेम, या द्वेष नहीं है, ० ॥२२॥

(७३३) चारों गतियों वाला संसार नहीं है, ० ॥२३॥

(७३४) देव और देवी नहीं हैं, यह ख्याल न रक्खे, देव और देवी हैं, यह ख्याल रक्खे ॥२४॥

(७३५) सिद्धि या अ-सिद्धि नहीं है, ० ॥२५॥

(७३६) सिद्धि (मोक्ष) जीवका अपना स्थान नहीं है, बल्कि सिद्धि जीवका निज स्थान है ॥२६॥

(७३७) साधु या असाधु नहीं हैं, ० ॥२७॥

(७३८) कल्याण (पुण्य) या पाप नहीं है. ० ॥२८॥

(७३९) (सर्वथा) कल्याण, या पापीसे (लोक) व्यवहार नहीं चल सकता। जो वैर है, मूढ पण्डित श्रमण उसे नहीं जानते ॥२९॥

(७४०) अशेष (जगत्)अक्षय (नित्य) है, या सब दुःख है, प्राणी (निरपराध) वधयोग्य है या अ-वध्य, ऐसा वचन न निकाले ॥३०॥

(७४१) समता युक्त आचार वाले, साधु जीवनवाले भिक्षु देखे जाते हैं, (अतः) ये मिथ्या जीविका वाले हैं; ऐसी दृष्टि न रक्खे ॥३१॥

(७४२) दानकी प्राप्ति होती है या नहीं, इसे धीमान् न व्याकृत (कथित) करे, और शान्ति मार्गको बढाये ॥३२॥

(७४३) जिनोक्त स्थानोंको संयममें स्थापित करके मोक्ष होने तक प्रयत्नमें लाये ॥३३॥

॥ पांचवां अध्ययन समाप्त ॥

———

अध्ययन ६

आर्द्रक–मुनिका आचार-पालन

(७४४) (गोशालने आर्द्रकके मनमें भ्रम पैदा करनेके लिये कहा :) हे आर्द्रक, (भगवान्‌के) पहले किये आचरण को सुनो। श्रमण (महावीर) पहले अकेले विचरण करते थे, (फिर) वह भिक्षुओंका उपनयन (उपसम्पदा) कर अब अलग-अलग स-विस्तर (धर्म) का व्याख्यान करते हैं ॥१॥

(७४५) उन अ-स्थिरचित्त (महावीर)ने यह आजीविका स्थापित की है, जो कि गण के साथ सभामें जा भिक्षुओंके बीच बहुजनोंके लिये भाषण करते, (उनका यह आचरण) पहलेसे मेल नहीं खाता ॥२॥

(७४६) "(पहलेका) एकान्त अथवा आजका (संघयुक्त जीवन) दोनों परस्पर मेल नहीं खाते।" (इस पर आर्द्रकने कहा)—पहले, और अब, तथा आगे भी वह एकान्त का इस प्रकार सेवन करते हैं ॥३॥

(७४७) लोकको समझकर, जंगम-स्थावरोंके कल्याण करनेवाले श्रमण-ब्राह्मण (महावीर) हज़ारोंके बीच भाषण करते भी, वैसे तथतावाले एकान्तका ही साधन करते हैं ॥४॥

(७४८) क्षमायुक्त, दान्त, जितेन्द्रिय (महावीर)को धर्म कथन करने में दोष नहीं, भाषाके दोष को निवारण करनेवाले(भगवान्‌का) भाषण सेवन करना गुण है ॥५॥

(७४९) (भिक्षुओंके) पांच महाव्रतों, और (उपासकोंके) पांच

अणुव्रतोंको, तथा आस्रवों (चित्तमलों) के, पांच संवरों का, यहां पूर्ण श्रमणभावमें थोडी भी शंका करने पर विरक्ति(का उपदेश करते हैं), यह मैं कहता हूँ ॥६॥

(७५०) (आजीवक-मत प्रणेता गोशालने कहा)—ठंडे जलको, अपने निमित्त बने भोजनको, और स्त्रियोंको भी सेवन करे, (इससे) एकान्त विचरण करनेवाले तपस्वी, हमारे धर्ममें पाप-लिप्त नहीं होते ॥७॥

(७५१) (आर्द्रकने कहा): ठंडे जलको ० स्त्रियोंको, इन्हें जानते सेवन करते (आदमी) घरवारी और अ-श्रमण हो जाते हैं ॥८॥

(७५२) वीजोदक (कच्चे वीज. कच्चा पानी) और स्त्रियोंको सेवन करते यदि श्रमण होवें, तो घरवारी भी श्रमण हो जायँगे, क्योंकि वे भी उसी प्रकार सेवन करते हैं ॥९॥

(७५३) जो वीज-उदक-भोजी भिक्षु जीविकाके लिये भिक्षा-विधि ग्रहण करते हैं, वे कुल-परिवारके सम्बन्धको छोडनेपर भी काया पोसने वाले हैं, (आवागमन के) अन्त करनेवाले नहीं हैं ॥१०॥

(७५४) (गोशालने कहा) यह वचन निकाल कर (आर्द्रक तुम) सारे धर्मानुयायियोंकी निन्दा करते हो। धर्मानुयायी अपने-अपने सिद्धान्तको अलग-अलग वतलाते, प्रगट करते हैं ॥११॥

(७५५) (आर्द्रक ने कहा:) वे परस्पर निन्दा करते, हैं, "(हम) श्रमण-ब्राह्मण हैं" कहते हैं। स्वमतके अनुष्ठानसे पुण्य होता, दूसरे के में नहीं होता। हम (उनकी) दृष्टिकी निन्दा करते हैं, और कुछ नहीं निन्दते ॥१२॥

(७५६) हम किसीको भेससे नहीं निन्दा करते,अपने सिद्धोंके मार्गको प्रकट करते हैं, इस सरल अनुपम मार्गको सत्पुरुष आर्योंने वतलाया ॥१३॥

(७५७) ऊपर-नीची-तिरछी (सारी) दिशाओंमें जो भी स्थावर और जंगम प्राणी हैं, प्राणियों-की हिंसासे घृणा करने वाले संयमी लोकमें किसी की निन्दा नहीं करते ॥१४॥

(७५८) (गोशालने कहा:) श्रमण(महावीर)भीरु हैं, अतः सरायों और आरामगृहों (विहारों में) निवास नहीं करते, क्योंकि वह सोचते हैं—(वहां) बहुतेरे मनुष्य कम-बेशी बोलने-चालनेवाले और दक्ष होते हैं ॥१५॥

(७५९) (वहां) कितने ही शिक्षक, बुद्धिमान्, सूत्रों और उनके अर्थोंमें विशेषज्ञ होते हैं। (वे) दूसरे भिक्षु कुछ पूछ न बैठें, इस भयसे (महावीर) वहां नहीं जाते ॥१६॥

(७६०) वह (भगवान्) कामनाके लिये कार्य नहीं करते। न बालकों जैसा कार्य करते हैं। राजा की आज्ञासे या भय से भी नहीं, (प्रश्नका) उत्तर देते, वह आर्यों के स्वेच्छा युक्त कार्यसे (भाषते) ० ॥१७॥

(७६१) जा कर या न जा कर वहां समताके साथ आशुप्रज्ञ (महावीर) उपदेश करते हैं, अनार्य (लोग) आर्य-दर्शनसे दूर होते हैं, इसलिये उनके पास वह (नहीं जाते) ॥१८॥

(७६२) (गोशालने कहा—' जैसे लाभ चाहनेवाला बनिया पण्य ले आमदनीके कारण मेल करता है, वही बात श्रमण ज्ञातृ-पुत्र की है, यही मेरा मत और वितर्क है ॥१९॥

(७६३) (आर्द्रकने कहा –) नया (कर्म) न करे, पुराने को हटावे। वह तायी (रक्षक) ऐसा कहते हैं। कुमतिको छोडकर (आदमी) मोक्ष पाता है। इतने से ब्रह्मव्रत कहा गया। उस (मोक्ष) के उदयकी कामना श्रमण (महावीर) रखते हैं। यह मैं कहता हूं ॥२०॥

(७६४) परिग्रह (लाभ संचय) की ममतामें पड़े बनिये प्राणि-

प्रमूहकी हिंसा करते हैं, वह मुनाफेकेलिये कुल-परिवारको न छोड संसर्ग करते हैं ।।२१।।

(७६५) वित्तके लोभी, मैथुनमें अति-आसक्त, खाद्यके लिये वनिये (सर्वत्र व्यापारके लिये)जाते हैं । हम तो काममें अनासक्त हैं (और) अनार्य प्रेममें फँसे ।।२२।।

(७६६) वे हिंसा और परिग्रह न छोड, (उनमें) फँसे अपनेको दण्ड देनेवाले हैं। उनका जो वह लाभ कहा जाता है, वह चारों गतियाँ और दुःख का देनेवाला है ।।२३।।

(७६७) वह लाभ न पूर्ण है न सदाका है, विद्वान् उसे दुर्गुण लाभ बतलाते हैं, उसका ऐसा लाभ है, तायी, ज्ञानी उस (लाभ) को साधते हैं, जो सादि (पर) अनन्त है ।।२४।।

(७६८) अहिंसक, सर्वप्रजानुकम्पक, धर्ममें स्थित, कर्मके विवेकके हेतु उन (भगवान्) को आत्म-दण्डी (वनिये) से उपमा देना (गोशाला) तेरे ही ज्ञानके अनुकूल है ।।२५।।

(७६९) खलीके टुकडेको भी शूली पर वेंध कर "यह पुरुष है" ऐसा सोच पकाये, अथवा लोकी को भी बालक मान (यदि पकाये), तो हमारे मतमें वह प्राणिवध (के पाप) से लिप्त होता है ।।२६।।

(७७०) और (यदि कोई) म्लेच्छ खलीके भ्रममें बींधकर आदमी को, अथवा बच्चेको लोकी (जान) पकाये, तो हमारे (मतमें) वह प्राणि-वध से लिप्त नहीं होता ।।२७।।

(७७१) पुरुष या बच्चेको बींधकर कोई आगमें सूले पर पकाये, खलीकी पिण्डी (यदि) समझता (हो), तो बुद्धों (अर्हतों) की पारणके योग्य वह (वस्तु) है, (यह शाक्य भिक्षु कहते हैं) ।।२८।।

(७७२) दो हजार स्नातक भिक्षुओंको जो नित्य भोजन कराते हैं, वह भारी पुण्यराशि जमाकर महासत्व-आरुप्य (देवता) होते हैं ।।२९।।

(७७३) प्राणियोंको जबरदस्ती (मार कर) पाप करना यतियोंके योग्य नहीं है, जो उसके बारेमें बोलते या सुनते, उन दोनोंके अज्ञान-केलिये वह बुरा है (यह धर्मज्ञ जिन कहते हैं) ॥३०॥

(७७४) ऊपर-नीचे-तिरछे दसों दिशाओं में जंगम. स्थावर (प्राणियों) के चिन्हों को देख कर प्राणियोंकी (हिंसाके) भय से बात या कार्य (विवेक पूर्वक) करे, तो (उसे) कोई दोष नहीं ॥३१॥

(७७५) खलीमें (पुरुषका) ख्याल नहीं हो सकता, अनाड़ी ही ऐसा कहता है, खलीकी पिण्डी में कहां यह सम्भव है, यह बात असत्य है ॥३२॥

(७७६) जिस वाणीको बोलनेसे पाप लगे, वैसी वाणी न बोले, (गोशाल,) यह तुम्हारा कथन गुणोचित नहीं है, (कोई) दीक्षित (भिक्षु) ऐसा नहीं बोलता ॥३३॥

(७७७) (बौद्ध-भिक्षुओ,) तुमने (अलकारकी भाषाकी अपेक्षा) परम-अर्थको पा लिया ? (तुमने)पूर्वसमुद्र(वंगसागर)और पश्चिम समुद्र (अरब सागर) हाथमें रक्खा जैसा छूकर देख लिया ? ॥३४॥

(७७८) जीवोंके दु:खको अच्छी तरह सोच और खाद्य अन्नकी विधिकी शुद्धि को भी (जान) कपट भेससे जीनेवाला होकर छलकी बात न कहे, संयतों का यही धर्म है ॥३५॥

(७७९) जो दो हजार स्नातक-भिक्षुओंको नित्य भोजन करायें, वह अ-संयत खून रंगे हाथों वाला, इस लोकमें निन्दा पाता है ॥३६॥

(७८०) मोटे भेडेको मार कर (जो लोग व्यक्ति के) उद्देश्यसे भात बना, उसे नमक और तेलसे छोंक-बघार कर मिर्चके साथ मांस पकाते हैं ॥३७॥

(७८१) फिर बहुतसे मांसको खाते, हम पापसे लिप्त नहीं होते, इस तरह अनार्यधर्मी, रस लोलुप, बाल-अनार्य कहाते हैं ॥३८॥

(७८२) जो वैसे (भोजन) को खाते हैं, वे अज्ञानी पापका सेवन करते हैं। कुशल पुरुष ऐसे को (खाने का) मन भी नहीं करते, मांस खानेकी बात असत्य है ॥३९॥

(७८३) सारे प्राणियोंपर दया करनेके लिये सावद्य-वध्य दोषको वर्जित करते, पापकी (शंका से) ज्ञातृ-पुत्रीय (किसी के) उद्देश्यसे बने भोजनको निषिद्ध करते हैं ॥४०॥

(७८४) प्राणियोंकी हिंसासे जुगुप्सित हो सारे प्राणियोंमें दण्ड (हिंसाका ख्याल) हटाये। सदोष (आहार) का न भोगना संयतका धर्म है ॥४१॥

(७८५) इस समाधि (युत) निर्ग्रन्थ धर्म में समाधि (या) इसमें सुस्थित, इच्छारहित हो (जो) विचरे, वह शील-गुण-सहित बुद्ध, (तत्वज्ञ) मुनि (तया) अत्यन्त यशका भागी होता है ॥४२॥

(७८६) जो नित्य दो हजार स्नातक-ब्राह्मणोंको भोजन कराते, वे भारी पुण्यराशि पैदा कर देव होते हैं, यह वेदवाद है। ४३॥

(७८७) कुलमें आनेवाले दो हजार स्नातकों-विप्रोंको जो नित्य भोजन कराये, वह (मांस) लोलुप (नरकके पक्षियोंसे) भरे बहुत जलता तथा नरकसेवी होता है ॥४४॥

(७८८) दयायुक्त धर्मसे घृणा करता, वधप्रतिपादक धर्मकी प्रशंसा करता, और दुश्शीलको भोजन कराता, (ऐसा) राजा निशा (रूपी नरक) में जाता है। (वह सुरोंमें कहां से जायगा ?) ॥४५॥

(७८९) (एकदण्डियोंने आर्द्रक से कहा :) हम दोनों धर्ममें स्थित (तत्पर) हैं, अब सुस्थित हैं, और आगामीकालमें भी। हमारे यहाँ भी आचारशील ज्ञानी (प्रशंसनीय है), परलोकमें (एक दूसरेसे कोई) विशेष नहीं है ॥४६॥

(७६०) अव्यक्तरूप, महान्, सनातन, अक्षय, और अव्यय पुरुषको तारात्रोंमें चन्द्रमाकी भाँति सर्वरूपमें सारे प्राणियोंमें चारों ओर हम मानते हैं ॥४७॥

(७६१) (आर्द्रकने कहा—) अव्यय मानने पर (जीव) न मरते न आवागमन करते, न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, कीट, पक्षी, सरिसृप, तथा देवलोक (जो परस्पर भिन्न हैं, वह भी) नहीं हो सकते ॥४८॥

(७६२) इस लोकको जाने विना ही धर्मको न जानते जो एकदण्डी केवल 'ज्ञानसे मुक्ति, बतलाते हैं, अपार घोर संसारमें वे स्वयं नष्ट हो औरों को भी नष्ट करते हैं ॥४९॥

(७६३) जो यहाँ पूर्ण केवल ज्ञानसे समाधियुक्त हो लोकको खूब जानते हैं, जो सारे धर्मको कहते हैं, (वे) स्वयं पारंगत दूसरोंको भी तारते हैं ॥५०॥

(७६४) जो यहां निन्दनीय (कर्म) स्थानमें बसते हैं, जो लोकमें (नीच) आचरण युक्त हैं, मैंने अपने मतके अनुसार कहा, अब आवुस, (दूसरोंके मत) उलटे हैं ॥५१॥

(७६५) हस्तितापस कहते हैं : 'हम वर्षमें बाण से एक-एक ही महागज मारते हैं, बाकी जीवों के ऊपर दया करनेके लिये वर्ष भरकी वृत्ति (एक गजसे) करते हैं ॥५२॥

(७६६) वर्षमें एक-एक प्राणको मार कर भी दोषसे निवृत्त नहीं हो सकते। (फिर तो) शेष जीवोंके वधमें लगे गृहस्थोंको भी थोड़े (पाप वाला क्यों) न मानें ॥५३॥

(७६७) वर्षमें एक-एक प्राणी मारता श्रमण व्रतमें स्थित (जो पुरुष माना गया), वह अनार्य है, वैसे (पुरुष) केवली (मुक्त) नहीं होते ॥५४॥

(७९८) बुद्ध-स्पष्टतत्वदर्शी(की) आज्ञासे इस समाधिको (कहा) इसमें तीन प्रकारसे सुस्थित तायी (अर्हत्) हैं। महाभवसागरको समुद्रकी तरह तरनेको धर्म कहा, ऐसा मैं कहता हूँ ॥५५॥

॥ छठवां अध्ययन समाप्त ॥

अध्ययन ७

नालंदीय

(७९९) उस कालमें, उस समयमें, ऋद्धि सौंदर्य समृद्ध ० परिपूर्ण, राजगृह नामक नगर होता था। उस राजगृह नगरसे बाहर उत्तर-पूर्व (दिशा) में अनेक सौ भवनोंसे युक्त नालंदा नाम बाहिरिका (शाखापुरी) नगरी थी ॥१॥

(८००) उस बाहिरिका नालंदामें आढ्य, दीप्तवित्त, फैले विपुल भवन, शयनासन, वाहनसे युक्त, बहुत धन, बहुत सोने-चांदीवाला, (धनके) आयोग, प्रयोगसे युक्त, बहुत भोजन-पानका देनेवाला, बहुत दासी-दास-बैल-भैंस-गायोंका रखनेवाला, बहुत जनोंसे अपराजित लेप नामक गृहपति रहता था।

वह लेप गृहपति (वैश्य) जैन श्रमणोंका उपासक भी था, जीव-अजीवादि सात तत्वों का जानकार हो विहरता है। वह निर्ग्रन्थ प्रवचन (सूत्रों) में शंका=सन्देह=विचिकित्सा से रहित परमार्थ प्राप्तगृहीतार्थ था। उसकी हड्डी और मज्जा तक (धर्म) के प्रेमके अनुरागसे रंगा था। वह कहता—आवुस, यह निर्ग्रन्थी प्रवचन है, यही परमार्थ है, बाकी निरर्थक, वह खुले किवाडों वाला, मुक्त द्वार, रानिवासोंमें भी उसका प्रवेश निषिद्ध नहीं था। चतुर्दशी, अष्टमी (दो) और पूनम को पोषध

व्रत अच्छी तरह पालन करता, निर्ग्रन्थ श्रमणों को अपेक्षित खान-पान. खाद्य-स्वाद्य से लाभान्वित करता, वहुतसे शील-व्रत-गुण-दुराचार से विरति (विरमण) प्राप्त प्रत्याख्यान = त्याग करता, पोषध और उपवासोंसे आत्माको शुद्ध करता विहरता था ।।२।।

(८०१) उस लेप गृहपतिकी वाहिरिका नालंदाके उत्तर-पूर्व दिशामें शेषद्रव्य नामक अनेक सौ खंभोंवाली प्रासादिक ० अनुरूप उदकशाला (प्याऊ) थी। उस शेषद्रव्य उदकशालाके उत्तर-पूर्व दिशामें हस्तियाम (हथियांव) नामक वनखंड था। वनखंडका रंग काला था ।।३।।

(८०२)उस गृहप्रदेशमें भगवान् गौतम विहरते थे। भगवान् आराम के नीचे थे। तव भगवान पार्श्वके अनुयायी निर्ग्रन्थ, गोत्रसे मेदार्य उदक पेढालपुत्र, जहाँ भगवान् गौतम (इन्द्रभूति) थे, वहाँ गये; जा के भगवान् गौतमसे ऐसे वोले—आवुस गौतम, मुझे कोई वात पूछनी है, उसे आवुस गौतम (अपने) सुने और देखे के अनुसार स-वाद व्याकरण करें (=वतलायें)। भगवान् गौतमने उदक पेढालपुत्रसे यों कहा—

···आवुस, यदि सुनकर निशामन कर जानेंगे, तो (हम कहेंगे) ।।४।।

(८०३) आवुस गौतम, कुमारपुत्रीय नामक श्रमण हैं, (जो) तुम्हारे प्रवचनको प्रवचन कहते हैं। उप-सम्पन्न गृहपति श्रमण-उपासकको यों प्रत्याख्यान कराते हैं—राजा को छोड, गृहपतिके चोर पकडने और छोडनेके दृष्टान्तके अनुसार जंगम प्राणियोंमें ऐसा दण्ड दे कर प्रत्याख्यान करना दुष्प्रत्याख्यान है। ऐसा प्रत्याख्यान कराते अपनी प्रतिज्ञा का अतिक्रमण करते हैं। किस कारण ? संसारी-स्थावर प्राणी भी त्रस हो (जन्मान्तरमें) हो जाते हैं, त्रस भी प्राणी स्थावर हो जनमते हैं। स्थावरकायसे छूट कर त्रसकायमें पैदा होते हैं, त्रसकायसे छूट कर स्थावरकायमें पैदा होते हैं। उन स्थावरकायोमें उत्पन्नोंका वध होना सम्भव है ।।५।।

(८०४) ऐसा प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है, ऐसा प्रत्याख्यान कराना सुप्रत्याख्यान कराना होता है। वे ऐसे प्रत्याख्यान कराते अपनी प्रतिज्ञा-का अतिक्रमण नहीं करते। राजाज्ञा* छोड अन्यत्र गृहपति का चोर पकडने छोडनेसे त्रस-भूत प्राणियों पर दण्ड चला, ऐसा यदि भाषाके प्रयोगके होनेपर, जो वे क्रोधसे लोभसे या दूसरे (प्रकार) से प्रत्याख्यान कराते हैं, उनका यह झूंठ बोलना होता है। यह उपदेश भी न्याय्य नहीं है क्या ? क्या आवुस गौतम, तुम्हें भी यह पसंद है ? ।।६।।

(८०५)भगवान् गौतमने वादके सहित (बहस करते) उदक पेढाल-पुत्र से यों कहा 'आवुस श्रमण, हमें ऐसा नहीं पसंद है, जो कि वे श्रमण-ब्राह्मण ऐसा कहते हैं० ऐसा निरूपण करते हैं। वे श्रमण-ब्राह्मण ठीक भाषा नहीं बोलते, वे अनुतापिनी भाषा बोलते हैं, वे अभ्याख्यान(निन्दा) करते हैं। वे श्रमणों और श्रमणोपासकोंका अभ्याख्यान करते हैं। और जो लोग अन्य जीवों=प्राणों=भूतों=सत्वों के विषयमें संयम करते हैं, उनका भी अभ्याख्यान करते हैं। किस कारण ? सारे प्राणी संसरण(आवागमन)करनेवाले हैं। जंगम प्राणी भी स्थावरत्वको प्राप्त होते हैं, जंगमकाया से छूट स्थावरकायामें उत्पन्न होते, स्थावरकायासे छूट त्रस (जंगम) कायामें पैदा होते। जंगम कायामें उत्पन्न पुरुष वध्य (हननके योग्य) नहीं होते ।।७।।

(८०६) उदक पेढाल-पुत्रने वाद (बहस) करते भगवान् गौतमसे

---

* राजाने आज्ञा दी थी, नगरके सभी लोग क्वार पूनोके महोत्सव-केलिये नगरसे बाहर आयें, जो नहीं आयेंगे, उन्हें मृत्युदण्ड दिया जायेगा। किसी गृहपतिके पांच पुत्र बाहर जाना भूल गये। राजाने अपराधी(चोर)समझ पांचोंको प्राणदण्ड दिया। गृहपतिने पुत्रोंकी प्राणभिक्षा मांगी। पांचोंके न मानने पर, चार की, फिर तीन की, फिर दो की, अन्तमें एककी प्राणभिक्षा मंजूर हुई। इसमें एकको बचानेसे चारके राजाज्ञानुसार मारे जानेके दोषमें उक्त गृहपति नहीं लिप्त होता।

यह कहा—आवुस गौतम, कौन हैं वे जिन्हें आप लोग जंगम प्राणी त्रस या दूसरा कहते हैं ? वादके साथ भगवान् गौतमने उदक पेढाल-पुत्र से यों कहा—आवुस उदक, जिन्हें तुम जंगम-भूत-प्राणी जंगम कहते हो' उन्हें ही हम जंगम प्राणी कहते हैं। और जिन्हें हम जंगम-प्राणी कहते, उन्हें ही तुम जंगमभूत प्राणी कहते हो। यह दोनों बातें तुल्य = एकार्थ हैं। क्यों आवुस, ऐसी अवस्थामें तुम्हें जंगम भूत प्राणी जंगम यह कहना अच्छा लगता है और' जंगम प्राणी जंगम' यह कहना बुरा लगता है। एक की तुम निन्दा करते हो और दूसरे का अभिनन्दन करते हो। इसलिये यह आपका किया भेद-न्याय संगत नहीं है।

भगवान् ने फिर कहा—कोई कोई आदमी हैं, जो साधुके पास आकर (पहले जैसा कहते हैं—) "हम मुण्डित होकर घरसे बेघरताको नहीं पा सकते, सो हम क्रमशः साधुओंके गोत्र-पदको न-प्राप्त करेंगे। वे ऐसा सोचते, ऐसा विचार करते हैं। (राजा आदि) की आज्ञाके विना गृहपतिका चोरके ग्रहण और त्याग द्वारा जो जंगम प्राणियोंमें दण्डको परिवर्जित करना है, वह भी उनके लिये कुशल ही है ॥८॥

(८०७) त्रस त्रस कहे जाते हैं, और वे उसके कर्म-फल भोगके कारण जंगम नाम धारण करते हैं। उसकी जंगम आयु क्षीण होती है, जंगमकाया की स्थिति भी (क्षीण होती है)। तव उस आयुको वह छोड देते हैं। उस आयुको छोडकर वे स्थावरमें जनमते हैं। स्थावर भी वह कहे जाते हैं, क्योंकि स्थावरके फल-भार वाले कर्मके द्वारा स्थावर हैं। इसलिये यह नाम इनको मिलता है। स्थावर आयु भी क्षीण होती है, स्थावरकायकी स्थिति भी, तव वे उस आयु(शरीर)को छोडते हैं। उस आयुको छोड फिर वह पारलौकिकता (जंगमता) को प्राप्त होते हैं। वे प्राणी भी कहे जाते हैं, वे त्रस जंगम भी कहे जाते हैं, वे महाकाय, वे चिरायु होते हैं ॥९॥

(८०८) बहस करते उदक पेढाल-पुत्रने भगवान् गौतमसे यों कहा—

आवुस गौतम, ऐसी कोई स्थिति नहीं है, जिसमें न मारकर श्रमणोपासक (जैन) अपने एक प्राणीके न मारनेकी विरति में सफल हो। किस हेतु? सारे प्राणी आवागमन करनेवाले हैं। स्थावर प्राणी भी जंगमत्वको प्राप्त होते हैं। स्थावरकाया से छूटकर सारे स्थावरकाया में उत्पन्न होते हैं। जंगम- काया से छुटकर सारे स्थावरकायामें उत्पन्न होते हैं। स्थावरकायों में उत्पन्न वह घातलायक (वध्य) होते हैं।

वहस कर भगवान **गौतमने** उदक पेढाल-पुत्रसे यों कहा—आवुस **उदक**, हमारे कथनमें ऐसा प्रश्न नहीं उठता, लेकिन तुम्हारे कथनमें वह उठ सकता है। वह बात यह है—जहां श्रमणोपासक सभी प्राणों=सभी भूतों=सभी जीवों=सभी सत्वोंमें त्यक्तदण्ड (अहिंसक) होता है। सो किस हेतु? प्राणी आवागमन वाले हैं, अतः स्थावर प्राणी भी जंगम (त्रस) कायामें जनमते हैं और जंगम प्राणी भी स्थावरोंमें पैदा होते हैं। जो जंगमकायों को छोडकर स्थावरकायोंमें उपजते हैं और जो स्थावर-कायोंको छोडकर जंगमकायों में उत्पन्न हो जाते हैं। वह जंगमकायमें उत्पन्न (श्रावकोंकेलिए) घात-योग्य (वध्य) नहीं होते। वे प्राणी भी कहे जाते हैं, जंगम (त्रस) भी कहे जाते हैं। वे महाकाय और चिरायु होते हैं। वे वहुतसे प्राणी हैं, जिनमें श्रमण-उपासकका प्रत्याख्यान (हिंसाविरति) सफल होता है। वैसे प्राणी कम ही होते हैं, जिनमें श्रमणोपासकोंका प्रत्याख्यान नहीं हो पाता। ऐसे (श्रावक) महान् जंगमकाय (के घात से) शान्त और विरत होता है। उनके वारे में तुम या दूसरे लोग जो कहते हैं, कि ऐसा एक भी पर्याय नहीं, जिसमें श्रमण-उपासकका प्रत्याख्यान हो सके, एक प्राण भी निहित-दण्ड हो सके (यह कहना गलत है) ॥१०॥

(८०९) भगवान् (गौतम) कहते हैं—निर्ग्रन्थ (जैन साधु) को पूछना चाहिये—आवुस निर्ग्रन्थ, यहां (दुनियामें) कोई-कोई मनुष्य होते हैं, वह ऐसा पहले मान लेते हैं—यह मुण्डित होकर घर से वेघर हो

प्रव्रजित (संन्यासी) होता है, 'मृत्यु पर्यन्त इनको दण्ड देना मैंने छोड़ दिया है,' और जो यह गृहस्थमें हैं उनको मृत्यु पर्यन्त दण्ड देना मैंने नहीं छोड़ा।

क्या कोई श्रमण ५, ६, १० अथवा कम या वेशी (काल तक) देशोंमें विहार कर गृहस्थ बन जाते हैं ?

हां, (गृहस्थ) बन जाते हैं।

(भगवान् गौतम पूछते हैं)—क्या उन गृहस्थोंके मारनेवाले का वह हिंसा-प्रत्याख्यान भंग होता है ?

(निर्ग्रन्थ कहते हैं)—ऐसे श्रमणोपासकने भी जंगम प्राणीमें जो दण्ड त्यागा, स्थावरप्राणीका दण्ड मैंने नहीं त्यागा है। अतः स्थावर-कायवाले प्राणी को भी मारनेसे उसका प्रत्याख्यान भंग नहीं होता। हे निर्ग्रन्थो, उसे ऐसा जानो, ऐसा जानना चाहिये।

भगवान् (गौतम) ने कहा – निर्ग्रन्थोंसे मुझे पूछना है—आवुस निर्ग्रन्थो यहां (लोकमें) गृहपति या गृहपति-पुत्र वैसे (उत्तम) कुलोंमें आ क्या धर्म सुननेके लिये साधुओंके पास जा सकते हैं ?

हां, पास जा सकते हैं।

(भगवान् गौतमने कहा)—वैसे उस प्रकारके पुरुषसे क्या धर्म कहना चाहिये ?

हां, कहना चाहिये।

क्या वे उस प्रकार धर्म सुनकर, समझ कर यह कह सकते हैं—कि यह निर्ग्रन्थोंका प्रवचन सत्य, अनुपम, केवल, परिपूर्ण, संशुद्ध, न्यायोचित, शल्य-काटनहार, सिद्धिमार्ग, मुक्तिमार्ग, निर्याण (निर्गम) मार्ग, निर्वाण-मार्ग, यथार्थ, असन्दिग्ध, सर्वदुःख प्रहीण-मार्ग, है ? इस(मार्ग) में स्थित जीव सिद्ध होते, बुद्ध होते, मुक्त होते, परिनिर्वाण प्राप्त होते, सब दुक्खोंका अन्त करते हैं। उस(मार्ग)की आज्ञाके अनुसार उसी तरह

चलेंगे, वैसे खड़े होंगे, वैसे बैठेंगे, वैसे करवट लेंगे, वैसे भोजन करेंगे, वैसे ही बोलेंगे, वैसे ही उत्थान करेंगे। वैसे उठकर सारे जीवों=भूतों=प्राणियों=सत्वोंके साथ संयम धारण करेंगे, क्या यह बोल सकते हैं ?

हां, सकते हैं ? (निर्ग्रन्थोंने कहा)

क्या वे उस प्रकार कहें तो वह उचित है ?

हां, उचित है।

क्या वैसे लोग मूंडने योग्य हैं ?

हां, योग्य हैं।

क्या वैसे लोग (प्रव्रज्यामें) उपस्थित करने योग्य हैं ?

हां, उपस्थित करने योग्य हैं।

उन्होंने सारे प्राणियोंमें ० सारे सत्वोंमें दण्ड (हिंसा) त्यागा है ?

हां, त्यागा है।

वे उस प्रकारके विहारसे विहर ; ० चार, पांच, छ या दस अथवा कम-वेशी देशों में विहार करते घर में जा (गृहस्थ बन) सकते हैं ?

हां, जा सकते हैं।

उन्होंने सारे प्राणियों ० सारे सत्वोंमें दण्ड छोड दिया ?

(निर्ग्रन्थोंने कहा-) यह बात नहीं है। (दण्ड, हिंसा कर सकते हैं) वह वही जीव हैं, जिसने घर छोड कर आसन्न सारे प्राणियोंमें ० सारे सत्वोंमें दण्ड त्यागा। पीछे संयमहीन हो आसन्नकालमें संयत होता अब असंयत है। असंयतका सारे प्राणियोंमें ० सारे सत्वोंमें दण्ड-निक्षेप (अहिंसा) नहीं होता। सो हे निर्ग्रन्थों, उसे ऐसा जानो, उसे ऐसा जानना चाहिए।

भगवान् (गौतम) ने कहा—निर्ग्रन्थों (जैन साधुओं) से मुझे पूछना

है : आवुसो निर्ग्रन्थो, यहां परिव्राजक या परिव्राजिकायें किसी अन्य तीर्थिक-स्थानसे धर्म सुननेके लिए आ सकते हैं ?

—आ सकते हैं।

—क्या वैसे लोगोंको धर्म कहना चाहिए ?

—हां, कहना चाहिये।

—वे वैसे(लोग) क्या प्रव्रज्यामें उपस्थापित किये जा सकते हैं ?

—हां, किये जा सकते हैं।

—क्या वे वैसे लोग साथ के उपभोगमें मिलाये जा सकते हैं ?

—हां, मिलाये जा सकते हैं।

—वे इस प्रकारके विहारसे विहरते वैसे ० घरमें जा वस सकते हैं ?

—हां वस सकते हैं।

और वे वैसे प्रकारके (लोगोंके) साथ उपभोगियोंमें मिलाये जा सकते हैं ?

(श्रमणोंने कहा)—यह उचित नहीं है। वे सब जो थे, जो पीछे उपभोगोंमें सम्मिलित नहीं किये जा सकते। वे जो जीव आसन्न हैं, वह उपभोगोंके योग्य हैं। वे जो जीव हैं, जो कि अब उपभोगिकता के योग्य नहीं। पीछे जो श्रमण, आसन्न(श्रमण) हैं, अब अ-श्रमण हैं। अश्रमणके साथ निर्ग्रन्थ श्रमण उपभोग(एक मण्डल पर खाने पीनेका मिला जुला व्यवहार) नहीं कर सकते। सो ऐसा जानो, सो ऐसा जानना चाहिये ॥११॥

(८११) भगवान् (गौतम) ने कहा—कोई-कोई ऐसे श्रमण-उपासक होते हैं, जो ऐसा मान बैठते हैं : हम मुंडित हो, घरसे वेघर-प्रव्रज्या नहीं ले सकते। [हम चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा के दिनोंमें पूरे पोषध

(उपवास) को अच्छी तरह पालन करते विहरेंगे। स्थूल-मोटी हिंसा का प्रत्याख्यान करेंगे। उसी प्रकार मोटे मिथ्याभाषणको, मोटी चोरीको, मोटे मैथुनको, मोटे परिग्रहका (त्याग) करेंगे। इच्छाको सीमित करेंगे, दो करण (करने-कराने)-तीन योग (मन, वचन काय) से (प्रत्याख्यान) करेंगे। मत कोई मेरे लिये कुछ करे या कराये। हम ऐसा ही प्रत्याख्यान करेंगे। वे विना खाये, विना पिये, विना नहाये, कुरसी-पीढेसे उतर कर वे वैसे काल करें, तो (उनके वारेमें) क्या कहना चाहिये ?

—अच्छी तरह काल किया, यही कहना होगा।

वे प्राणी भी कहे जाते, जंगम (त्रस) भी कहे जाते। वे महाकाय हैं वे चिरायु हैं। वहुतेरे प्राणी है, जिनमें श्रमण-उपासकका प्रत्याख्यान (हिंसात्याग) ठीक होता है। वे थोडेसे प्राणी होते हैं, जिनमें श्रमण-उपासकका प्रत्याख्यान नहीं होता। वह महा(काय)से प्रत्याख्यान ठीक है, उसे (आप आधारहीन वतलाते) यह भेद करना भी (आपका) न्याय्य नहीं है।

भगवान्(गौतम) ने और कहा: कोई-कोई श्रमणोपासक होते हैं, जो इस प्रकार कह देते हैं—हम मुण्डित हो घर से(वेघर)प्रव्रजित नहीं हो सकते, न हम चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णमासीको(उपोसथ)पालन करते विहर सकते हैं। हम तो अन्तिम मरणकालमें संलेखना =अन्नपान-का परित्याग कर ० जीवनकी इच्छा न करते विहरेंगे। (तव) हम सारी प्राणि-हिंसाका प्रत्याख्यान करेंगे, सारे परिग्रहका प्रत्याख्यान करेंगे तीनों प्रकारसे। मेरेलिये मत कुछ करो, न कराओ ० कुरसी-पीढेसे उतर कर जिन्होंने काल किया, (उनके वारेमें) क्या कहना चाहिये ?

—ठीकसे काल किये, कहना चाहिये।

—वे प्राणी भी कहे जाते ० यह भेद करना भी न्याय्य नहीं है।

भगवान् (गौतम) ने और कहा—कोई-कोई मनुष्य होते हैं, जैसे

कि महा-इच्छावाले, वड़े तूल करनेवाले, महा परिग्रहवाले, अधार्मिक ० प्रसन्न करनेमें अतिकठिन ० सारे-सारे परिग्रहोंसे जीवनभर न विरत। उन प्राणियोंमें श्रमणोपासक व्रत(लेने)से मृत्यु तक त्यक्त-दण्ड (अ-हिंसक) होता है। वे (जन) वहाँसे आयु छोडते हैं, वहां से अपने किये कर्मको लेकर दुर्गति में जाते हैं। वे प्राणी भी कहे जाते, वे त्रस भी कहे जाते। वे महाकाय हैं, चिरायु हैं। वे वहुतेरे (व्रत) लेने से ऐसे हैं, (अहिंसक) हैं। जिनके वारे में तुम (वैसा) कहते हो, यह भी भेद (निराधार कहना) न्याय्य नहीं है।

भगवान् (गौतम) ने और कहा—कोई-कोई मनुष्य होते जैसे हैं, कि आरम्भ (हिंसा)-हीन, परिग्रहहीन, धार्मिक, धर्मपूर्वक अनुज्ञा देने-वाले ०, सारे परिग्रहोंसे आजीवन रहित-विरत, जिनके विषयमें श्रमण-उपासकने (व्रत) लेनेसे मृत्यु पर्यन्त दण्ड त्यागा होता। वे वहां से आयु छोड़ते हैं। वहां से पुनः अपने किये कर्म को ले सुगतिगामी होते हैं। वे प्राणी भी कहे जाते, जंगम भी कहे जाते ० (निराधार कहना) न्याय्य नहीं।

भगवान् (गौतम) ने और कहा—कोई-कोई आदमी होते हैं, जैसे कि अल्पेच्छ, अल्प-आरम्भ, अल्प-परिग्रह, धार्मिक, धर्मपूर्वक अनुज्ञा देने वाले ० किसी एक परिग्रह (=हिंसा) से विरत होते। जिन प्राणियोंमें श्रमणोपासक ने (व्रत) लेनेसे मृत्युपर्यन्त दण्ड त्यागा है। वे वहां से आयु छोड़ते हैं, वहां से पुनः अपने किये को ले स्वर्गगामी होते हैं। वे प्राणी भी कहे जाते, त्रस भी कहे जाते ० न्याय्य नहीं है।

भगवान् (गौतम) ने और कहा—कोई कोई मनुष्य होते हैं, जैसे कि अरण्यवासी, अतिथिशाला-वासी, ग्रामनिमंत्रित, कुछ रहस्य जानकर। जिनके वारेमें श्रमणोपासक व्रत लेनेसे मृत्यु-पर्यन्त दण्ड त्यागी होता है। वे (जीव) पहले ही काल कर जाते हैं, करके परलोकगामी होते हैं। वे

प्राणी भी कहे जाते, त्रस (जंगम) भी कहे जाते, महाकाय भी, चिरायु भी होते। (उनमें) वे बहुतेरे होते हैं, जिनके विषयमें श्रमणोपासकका प्रत्याख्यान ठीक होता। ० नहीं न्याय्य है।

भगवान् (गौतम) ने और कहा—कोई कोई प्राणी समान आयु वाले होते हैं, जिनके बारेमें श्रमण-उपासकने(व्रत)लेनेसे मृत्युपर्यन्त दण्ड त्यागा होता है। वे स्वयं ही काल करते हैं। (काल)करके पर-लोकगामी होते हैं। वे प्राणी भी कहे जाते, त्रस भी कहे जाते, वे महा-काय, एकसमान आयुवाले होते। (उनमें) वे बहुतेरे हैं, जिनके बारेमें श्रमणोपासकका प्रत्याख्यान ठीक है। ० (कहना) नहीं न्याय्य है।

भगवान् गौतम) ने और कहा—कोई-कोई श्रमणोपासक होते हैं, वे ऐसा कहते हैं: हम मुण्डित हो ० प्रव्रजित नहीं हो सकते। नहीं हम चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमामें परिपूर्ण पोषध(उपवास)का पालन कर सकते। नहीं हम अन्तिम कालमें ० विहार कर सकते। हम सामायिक (समयके प्रमाणके अनुसार समभावकी साहजिक प्रवृत्ति) और देश-अवकाशित (कोस-योजनको सीमा रखते) को ले इसप्रकार (उस सीमासे) अधिक (प्रतिदिन) प्रातः पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिन ऐसे सारे प्राणों ० सारे सत्वोंमें दण्ड त्यागे, सारे प्राणि-भूत-जीव और सत्व समूहमें मैं क्षेमकर होजाऊं। वहाँ (व्रत लेनेसे) परे जो त्रस (जंगम) प्राणी हैं, जिनके वारेमें श्रमण-उपासकने (व्रत) लेनेसे मृत्यु-पर्यन्त दण्ड त्यागा होता है। फिर आयु छोड़ता है, छोड़कर जो बाहर त्रस प्राणी हैं, उनमें जनमते हैं। जिनके वारेमें श्रमण-उपासक का प्रत्याख्यान ठीक होता है, वे प्राणी भी ० नहीं न्याय्य है ॥१२॥

(८११) वहां पासमें जो त्रस प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमण-उपासक ने (व्रत) लेनेसे मृत्युपर्यन्त दण्ड त्यागा होता है। वे वहां से आयु छोड़ते हैं, छोड़कर वहां से पासमें जो स्थावर प्राणी हैं, जिनके बारेमें श्रमण-उपासकने अर्थयुक्त दण्ड नहीं त्यागा, व्यर्थ(अनर्थ)दण्ड देना

को लेकर, पापकर्मोंके न करनेकी (बात कह) वह परलोककी विशुद्धिके लिये (कहनेवाला) है।

ऐसा कहनेपर वह उदक पेढालपुत्र भगवान् गौतमको अनादर करते जिस दिशासे आया था, उसी दिशामें जानेकी सोचने लगा।

भगवान् (गौतम) ने और भी कहा—आवुस उदक, जो कोई वैसे श्रमण-ब्राह्मणके पास से एक भी आर्य धार्मिक सूक्ति सुनकर, जानकर और अपने सूक्ष्मतासे प्रत्यवेक्षण कर यह अनुपम योग-क्षेम पद (मुझे) मिला (सोच', उस (पुरुष)को आदर करता, मानता, वन्दना करता, सत्कार करता, संमान करता ० कल्याण मंगल और देव सा पूजा करता है।

तब उदक पेढाल-पुत्रने भगवान् गौतम से यों कहा—भन्ते ! इन पदोंका पहले ज्ञान न होनेसे, श्रवण न होने से, श्रोत्र न होने से, समझ न होने से, दृष्ट न होने से, श्रुत न होने से, स्मृत न होने से, विज्ञात न होने से, विगाहन न होनेसे,अवगाहन न होने से, (संशय-)विच्छेद न होनेसे निर्वाहित न होने से, निसर्गजात न होने से, उपधारित न होने से, इस बात पर मैंने श्रद्धा नहीं की, विश्वास नहीं किया, पसन्द नहीं किया। भंते, इन बातोंके इस समय ज्ञात होने से, सुनने से, बोधसे ० उपधारणसे इस बात पर श्रद्धा करता हूँ, पसंद करता हूँ, वैसे ही जैसे कि आप कहते हैं।

तब भगवान् गौतमने उदक पेढाल-पुत्रसे यों कहा—श्रद्धा करो आर्य, पतियाओ आर्य, पसंद करो आर्य, यह ऐसा ही है, जैसा कि हम कहते हैं।

तब उस उदक पेढाल-पुत्रने भगवान् गौतम से यों कहा—भंते ! आपके पास चार याम वाले (पार्श्व) के धर्मसे (महावीर के) प्रतिक्रमण सहित पाँच महाव्रतवाले धर्मको लेकर विहरना चाहता हूँ।

तब भगवान् गौतम उदक पेढाल-पुत्रको लेकर जहां श्रमण भगवान्

महावीर थे, वहां गये। पास जा कर तब उदक पेढाल-पुत्रने श्रमण भगवान महावीर को तीन वार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा कर वन्दना-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर यों कहा—भन्ते मैं चातुर्याम धर्मके स्थानमें प्रतिक्रमण सहित पंचमहाव्रतिक धर्ममें उपसम्पदा पा विहरना चाहता हूँ।

तब श्रमण भगवान् महावीरने उदकसे यों कहा—देवानुप्रिय, जैसे चाहो, सुखपूर्वक (विहरो) प्रतिवन्ध(रोक)मत करो।

तब उस उदक पेढाल-पुत्रने श्रमण भगवान् महावीरके पास चातुर्याम धर्म से प्रतिक्रमण सहित पंचमहाव्रतिक धर्ममें उपसम्पदा पा बिहार किया। यह मैं कहता हूं ॥१४॥

सातवाँ नालंदीय अध्ययन समाप्त

———

इति सूत्रकृतांग(दूसरा श्रुतस्कन्ध)समाप्त

परिशिष्ट

बौद्ध ग्रन्थों में भगवान् महावीर

निगण्ठो, आवुसो नाथपुत्तो सव्वञ्जु, सव्वदस्सावी अपरिसेसं णाण-दस्सणम् परिजानाति चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं नाणदस्सणम् पच्चुपट्ठितिः

मज्झिमनिकाय भाग १ पृ० ९२-९३

अर्थात्—निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र, सर्वज्ञ और शर्वदर्शी है। वे अशेष ज्ञान और दर्शन के ज्ञाता हैं, हमारे चलते, ठहरते, सोते, जागते, समस्त अवस्थाओं से सदैव उनका ज्ञान और दर्शन उपस्थित रहता है।

"अयम् देव निगण्ठो नाथपुत्तो संघी चेव गणी च गणाचार्यो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधु सम्मतो वहुजनस्य रत्तस्सू चिर-पव्वजितो अद्धगतो वयो अनुप्पत्ता।"

दीर्घनिकाय (P. T. A.) भाग १
पृ० ४८-४९

"सर्वज्ञ आप्तो वा सज्योतिर्ज्ञानादिकमुपदिष्टवान्। यथा ऋषभ-वर्धमानादिरिति।

न्यायविन्दुः, अ० ३।

अर्थात्—सर्वज्ञ आप्त ही उपदेशदाता हो सकता है, जैसे ऋषभ और वर्द्धमान।

+ + +

अहिंसा के महान् प्रचारक महावीर—

भगवान् महावीर ने पूरे बारह वर्ष के तप और त्याग के बाद अहिंसा का सन्देश दिया। उस समय हिंसा का अधिक जोर था। हर घर में यज्ञ होता था। यदि उन्होंने अहिंसा का सन्देश न दिया होता तो आज भारत में अहिंसा का नाम न लिया जाता।

बौद्धभिक्षु प्रो० श्री धर्मानन्द, कौशांबी,
भ० महावीर का आदर्श जीवन पृष्ठ १२

\+ \+ \+

"वहाँ सारिपुत्र ! मेरी यह तपस्विता थी, अचेलक था, मुक्ताचार हस्तापलेखन(हथचट्टा) था, नष्टहिमादिन्तक(बुलाई भिक्षा का त्यागी) न तिष्ट-भदन्तिक (ठहरिये कह दी गई भिक्षा को) न अपने उद्देश्य से किये गये को, और न निमन्त्रण को खाता था............न मछली, न मांस खाता और न सुरा पीता था।.........शाकाहारी था।......... केश दाढ़ी नोचने वाला था।"

मज्झिम निकाय १।२।२ हिन्दी पृ० ४८-४९

\+ \+ \+

"एक समय महानाम ! मैं राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर विहार करता था। उस समय बहुत से निग्गंठ (जैनसाधु) ऋषिगिरि की काज-शिला पर खड़े रहने का व्रत ले...... ...वेदना झेल रहे थे।......... उन निग्गंठों से मैं बोला-'आवुसो' निग्गंठों ! तुम खडे क्यों............ तीव्र वेदना झेल रहे हो ?' उन निग्गंठों ने कहा 'आवुस' निग्गंठ नाथपुत्त (=जैन तीर्थंकर महावीर) सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं, आप अखिल ज्ञान-दर्शन

को जानते हैं—चलते, खडे, सोते, जागते सदा निरन्तर (उनको) ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है। वह ऐसा कहते हैं—'निग्गंठो'! जो तुम्हारा पहले का किया हुआ कर्म है उसे इस कडवी दुष्कर क्रिया-(तपस्या) से नाश कर दो, और जो इसवक्त यहाँ काय वचन मनसे संवृत्त हो, यह भविष्य के लिये पाप का न करना हुआ। इस प्रकार पुराने कर्मों का तपस्या से अन्त होने से और नये कर्मों के न करने से भविष्य में चित्त अन्-आस्रव होगा। भविष्य में आस्रव न होने से कर्म क्षय (होगा), कर्म क्षय से दुःख का क्षय, दुःख क्षय से वेदना का क्षय, वेदना क्षय से सभी दुःख नष्ट होंगे। हमें यह विचार रुचता है, इससे हम सन्तुष्ट हैं।"

वेदों में भगवान् महावीर—

देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभर वेद्यस्याम्।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वदेवा आदित्यायज्ञियासः १४
ऋग्वेद मण्डल २, अ० १, सूक्त ३.

अर्थात् हे देवों के देव वर्धमान! आप सुवीर (महावीर) हैं, व्यापक हैं। हम सम्पदाओं की प्राप्ति के लिये इस वेदी पर घृत से आपका आह्वान करते हैं। इसलिये सब देवता इस यज्ञ में आवें और प्रसन्न होवें।

आतिथ्यं रूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेतत्रिस्त्रो रात्रीः सुरासुताः ॥मन्त्र १४॥ यजुर्वेद, अध्याय १९।

अर्थात्—अतिथिस्वरूप पूज्य मासोपवासी जातमात्र स्वरूप महावीर की उपासना करो, जिससे संशय, विपर्यय अनध्यवसायरूप तीन अज्ञान और धनमद शरीरमद और विद्यामद की उत्पत्ति नहीं होती।

नोट—यह परिशिष्ट भाग का मैटर श्रीराहुल की ओर का न समझा जाय।

नामानुक्रमणी

शब्दानुक्रमणी

(नोट) शब्दके आगे पृष्टांक और उसके आगे ब्रेकेटमें पंक्तिके पढ़ियेगा।